अठारहवीं अक्षांश रेखा

"क्या कहा ? ये रोटियां उस निजाम साहब ने दी हैं, जिसने आज गद्दी सम्हाली है ?"

"हां, हां, उन्होंने खुद अपने हाथों से चुनकर भिजवायी हैं।"

सूफी फकीर की आंखें पल भर को झपकीं। "अहा, कैसी दरियादिली है ! कितने मजहबपरस्त हैं। इतनी सूखी रोटियां. . . .कितनी हैं, देखूं तो ! एक-दो-तीन. . . .पूरी सात हैं। हाय, बेचारे का खानदान सात पुश्तों में ही सूख जायेगा।"

—18वीं सदी की एक **लोक-कथा**

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

अठारहवीं अक्षांश रेखा

अशोकमित्रन

अनुवाद

सुमति अय्यर
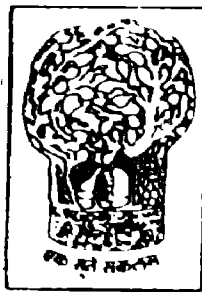
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

भूमिका

आज से कोई चालीस साल पहले शंकर राम, षण्मुखसुंदरम्, क. ना. सुब्रह्मण्यम तथा कु प. राजगोपलन ने एक नयी साहित्यिक चेतना के साथ तमिल में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। तब से आज तक एक पीढ़ी से भी अधिक समय गुजर चुका है और तमिल उपन्यास पूर्ण रूप से सक्षम होकर अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन जैसी विश्व स्तर की भाषाओं के उपन्यासों में अपना एक स्थान बना चुका है। तमिल उपन्यास के सूत्रधारों ने पिछली शताब्दी के अंत में सांस्कृतिक बदलाव के प्रति जो चिंता व्यक्त की थी, उसके बाद इस शताब्दी के प्रारंभिक चालीस वर्षों तक उन्हीं के अनुकरण पर जो उपन्यास लिखे गये, उन रचनाओं में दृष्टिगोचर होने वाली सामाजिक आलोचना भी उपन्यासों की आम कथावस्तु से संबंधित ही होती थी। हालांकि कुछ रचनाकारों नें उन्हीं दिनों शैली की दृष्टि से कुछ नये प्रयोग करने का प्रयास भी किया, पर साहित्यिक चेतना से युक्त उपन्यास पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में ही लिखे गये। आज के उपन्यासों में कथावस्तु की अपेक्षा शैली में प्रयोग पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।

इकाई के रूप में आदमी का अस्तित्व, समाज के बुद्धिजीवी युवकों में "प्यार" जैसे शब्द के प्रति अनास्था, सामाजिक बदलाव की घटनाएं, टूटते परिवारों का संत्रास, प्रांतीय तथा वर्ग संबंधी समस्याएं तथा और भी कई ऐसी समस्याएं हैं, जो आज भी आम आदमी के लिए अबूझ बनी हुई हैं; आज का उपन्यासकार उन पर खूब लिख रहा है। यह नयापन कथावस्तु में नहीं है, शैली में भी अब नये प्रयोग किये जाने लगे हैं। एक ओर जहां ये पाठक को बांधे रखने में सक्षम हैं, दूसरी ओर ये साहित्यिक चेतना के साथ रचना के आकलन का भी अवसर प्रदान करते हैं।

इन प्रयोगों ने बहुत ही कम समय में तमिल उपन्यासों को नये प्रतिमान दिये हैं। ति. जानकीरामन ने जहां एक ओर हमारी संस्कृति के सशक्त पक्ष, कर्नाटक संगीत, संयुक्त परिवार की परंपरा तथा समाज में स्त्रियों की स्थिति जैसे विषयों पर "मोहमुक", "चेंबरुत्ती", "उयिरतेन" जैसे उपन्यासों की कथावस्तु बुनी है, वहीं

दूसरी ओर "अम्मा वंदाल" तथा "मरापसु" में यह दिखाने का प्रयास किया है कि इच्छाओं और शारीरिक लालसाओं के दमन और उनके अतृप्त रह जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप कोई भी स्त्री कितना खुला आक्रोशपूर्ण कदम उठा सकती है। इस तरह की प्रतिक्रियात्मक स्थिति में जब स्त्री संतोष ढूंढ़ने का प्रयास करती है तो पूरे समाज में उसकी स्थिति कितनी निरीह और असहाय हो जाती है, फिर हार कर किस तरह परंपरागत मूल्यों को दोबारा स्वीकार करने के लिए वह विवश होती है, इन तथ्यों को इन उपन्यासों में बखूबी उभारा गया है। जानकीरामन ने कथावस्तु को एक नया आयाम तो दिया ही है, साथ ही उनका यह उपन्यास अपनी आंचलिकता के कारण भी विशिष्ट है। उनकी शैली के तीखे व्यंग्य एवं सांकेतिक भाषा के कारण, उनके पात्र व्यावहारिक जीवन के निकट आते हैं। कहीं कोई आदर्शवाद जैसी बात नहीं। कथानक के बीच खिंचने वाला मौन अंतराल कथा के प्रवाह में बाधक कतई नहीं बनता। अपनी सहज सरल शैली द्वारा जानकीरामन ने कथानक के बीच में खिंचने वाले मौन अंतराल के दौरान ही पाठकों की मनोभावनाओं का सुंदर चित्रण किया है। ऐसी स्थिति में पाठक स्वयं कहीं नहीं मुखर होते। 'नारी-मुक्ति' तथा 'आधुनिक नारी' जैसे विषयों को उन्होंने प्रचारात्मक नहीं बनाया है। नारी को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है। स्थितियों के बदलाव को स्वयं उसकी संवेदनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। बाहर आये हुए आदमी के लिए सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों के खिलाफ चौराहे पर भाषण देने की कोई आवश्यकता नहीं। उसके क्रियाकलाप, उसके विचार स्वयं उसके इस अकेले होने के प्रमाण हैं। उनके पात्र कुछ इसी तरह के हैं। वे कोई फलसफा नहीं बोलते। हालांकि जानकीरामन प्रतीकात्मक शैली तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सहारा नहीं लेते, पर पात्रों की गतिविधियों से उनकी चारित्रिक विशेषताओं का पता पाठकों को लग जाता है।

उपन्यासकार जयकांतन जब बुद्धिजीवी वर्ग पर लिखते हैं तो उनके कथोपकथन जितने विश्लेषणपरक होते हैं, समाज के निचले तबके के लोगों के चित्रण में वे उतने ही यथार्थपरक हैं। वे जब अभावग्रस्त लोगों का बात करते हैं तो दल के प्रचारक कतई नहीं बनते। उन्होंने समाज के सुविधाजीवी वर्ग की अनुत्तरदायित्वपूर्ण प्रवृत्ति के परिपेक्ष्य में आज के अभावग्रस्त वर्ग की दयनीय स्थिति को बखूबी उभारने का प्रयास किया है। वे अभावग्रस्त जीवन के अंधेरे कोनों में छिपी हर बात को यूं प्रस्तुत करते हैं कि पाठक की सहानुभूति सहज ही पात्र के प्रति हो जाती है। "उन्नै पोल ओरुतन" उपन्यास में समाज के निम्नतम वर्ग की ऐसी औरत का चित्रण है, जो इतना भी नहीं जानती कि उसके बेटे का पिता कौन है। अपनी हालत से ऊब कर

जब वह किसी सहारे की तलाश करती है तो पुत्र की ममता और इस नये प्रेम संबंध के बीच के उस अंतर्द्वंद्व को लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। उसका बेटा, उसकी स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाता और उससे अलग हो जाता है। प्रेमी भी उसे छोड़कर कहीं चला जाता है। अंत में एक लड़की को जन्म देकर उसकी मृत्यु हो जाती है। उसका बेटा उस नवजात शिशु के पोषण का भार सहज ही उठा लेता है। यह स्थिति निम्न वर्ग के लोगों की उस विवशता का प्रतीक है, जिसके तहत वे चाहे अनचाहे जिंदगी के कई बोझ ढोते चलते हैं।

जयकांतन के प्रारंभिक प्रमुख उपन्यासों में से एक उपन्यास में झोपड़-पट्टी वालों की बोली और उनके परिवेशगत चित्रण के माध्यम से तमिल उपन्यास जगत की शैली को एक नाय आयाम दिया गया। "सिलनेरंगलिल सिल मनिदरगल" में एक ऐसी बुद्धिजीवी स्त्री के भीतरी अंतर्द्वंद्व का चित्रण है, जो अपने जीवन में घटी ऐसी एक घटना के कारण कितनी ही तकलीफें झेलती है, जिस पर स्वयं उसका वश नहीं था। उन तकलीफों को झेलकर, वह अपनी जीवन दृष्टि में परिवर्तन लाती है और अपने कलंकित जीवन को समाज की यथास्थिति के अनुरूप ढालना चाहती है। हर स्थिति में, लिये जाने वाले निर्णय उसके अपने हैं। शील और नैतिकता जैसे नियम हमारे समाज में केवल स्त्रियों के लिए ही बने हैं और इनका प्रभाव जब उनके जीवन पर सीधा पड़ता है तो ऐसी स्थिति में उनकी सहज होने वाली प्रतिक्रिया पर जयकांतन चुप रहते हैं। वे कुछ नहीं कहते, न विरोध में, न सहमति में। यह जानते हुए भी कि इन स्थितियों में हमारा समाज ही जिम्मेदार है, वे उस आकारहीन व्यवस्था पर उंगली नहीं उठाते। कथा पात्रों के विचार सहज कथोपकथन के माध्यम से स्वयं ही प्रकट होते चलते हैं और यहीं पर जयकांतन पाठकों की सहानुभूति पात्रों को दिलाने में सफल होते हैं। पाठक के रूप में उन्होंने तमिल साहित्य को एक विशिष्ट बौद्धिक शैली दी है। दूसरी ओर रचनाकार के रूप में स्थितियों की मांग के अनुसार पात्रों द्वारा प्रयुक्त होने वाली सहज भाषा को भी प्रचलित किया है। उनकी रचनाओं का कलात्मक सौंदर्य उनकी कथा प्रस्तुति की शैली और पात्रों की मांग के अनुरूप अपने को ढाल लेने की क्षमता में है।

"कृत्तिका" अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक शैली द्वारा पात्रों के व्यवहार का कारण खोजते हैं। कृत्तिका ने जहां एक ओर महानगर दिल्ली के उच्च वर्ग की मन:स्थितियों का चित्रण कई उपन्यासों में किया है, वहीं दूसरी ओर "वासवेश्वरम्" में ग्रामीण लोगों में छिपे उद्वेगों का सूक्ष्म चित्रण किया है। हालांकि इनके उपन्यासों की कथावस्तु का आधार देश की समकालीन तथा भावी स्थितियां हैं, पर हमारी संस्कृति के मूल स्वर स्वरूप पुराणों से प्रेरित होकर, उन संदर्भों के आधार पर अपनी

कथावस्तु की भूमिका तैयार करना, उनके उपन्यासों की विशेषता है । देश के राजनीतिक-आर्थिक भविष्य के प्रति उनकी भविष्यवाणियां व्यावहारिक तौर पर भी कितनी सही उतर रहीं हैं, इसे तो हम प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं ।

देश की नीति के कारण विश्व की राजनीति में उसकी जो विशेषताएं हैं, उनका चित्रण तमिल उपन्यासों में अधिक नहीं मिलता । धन कमाने की लालसा में, समुद्र पार कर दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में जा बसे दक्षिण भारतीयों की स्थिति तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भोगी तकलीफों का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ यथार्थ-परक चित्रण यदि कहीं हुआ है, तो "पुयलिले ओरू तोपी" का नाम उल्लेखनीय है । कथाकार पं. सिंगारम ने भोगे हुए अनुभवों से कथानक को संवारा है । बहुत कम उपन्यासकार ऐसे हुए हैं जिन्होंने अछूते विषयों पर लेखनी उठायी है । पं. सिंगारम उनमें से एक हैं ।

इस शृंखला में एक नाम और जुड़ता हैं, डेविड सिन्नय्या का । उन्होंने उग्रवादी राजनीतिक सिद्धांतों की वजह से कारावास में कैद राजनीतिक बंदियों, खास तौर पर महिला बंदियों की स्थितियों का बहुत ही संवेदनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है । "चिरैच्चालै एन्न चेयुयम" इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय उपन्यास है । चंबल घाटी के डकैतों का एक समूह, उसके रीति-रिवाज, उसके नियम तथा उन नियमों पर चलने वाले लोगों का जीवन अंत में किस प्रकार जयप्रकाश और विनोबा के उपदेशों से बदल जाता है, इसका सुंदर चित्रण किया है "मुल्लुममलर्ददु" उपन्यास में लेखिका राजम कृष्णन ने । यह अपने ढंग का एक नया प्रयोग है । कला फिल्मों के निर्माण में, एक सक्षम निर्देशक, आदर्श अभिनेताओं की तलाश में किस तरह भटकता है और उसे इस कार्य में सफलता पाने के लिए क्षेत्र में फैली व्यावसायिकता से किस तरह जूझना पड़ता है इसका खूबसूरत चित्र "नील नयनगंल" में ना. पार्थसारथी ने किया है ।

अंग्रेज व्यापार के लिए इस देश में आये । कई स्थानों पर उनका आधिपत्य रहा । इस दौरान तेलंगाना से कई लोग सुदूर दक्षिण में जाकर बस गये । इसी घटना को आधार बनाकर कि. राजनारायण ने " गोपल्ल ग्रामम्" की कथावस्तु बुनी है । इसमें पूर्वजों से सुनी किंवदंतियों को आधार बनाकर प्रामाणिक तौर पर विषय को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । कथानक का विकास लेखक के अतिरिक्त एक विशिष्ट पात्र के कथन के माध्यम से किया गया है ।

आज देश की आर्थिक प्रगति के साथ ही साथ लोगों के रहन-सहन में परिवर्तन आ गया है । गांव की स्थिति धीरे-धीरे शहर की-सी संकीर्ण होती जा रही है । इस बदलाव की स्थिति को देखकर लिखे गये उपन्यासों में राजम कृष्णन का "अमुदमाणि वरुग"

तथा उमाचंद्रन का "मुल्लुम मलरुम" उल्लेखनीय है। इसी कड़ी में एक और उपन्यास का नाम जोड़ा जा सकता है और वह है क. सुब्रह्मण्यम का "वेरुम विषुदुम"। सेलम के पास माग्नासैट खनिज निकालने की योजना का, उस क्षेत्र के कुटीर उद्योगों पर ही नहीं, वहाँ के लोगों के पारस्परिक संबंधों तथा रोजमर्रा जिंदगी पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। के. विट्ठलराव का उपन्यास "पोक्किडम" इसी समस्या पर आधारित है। "छायावनम" उपन्यास एक ऐसे अकेले व्यक्ति के संघर्ष की कहानी है, जो घने जंगल के बीच, अपने खेत की रखवाली में अकेला जूझता है।

आज आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग अभावग्रस्त स्थिति के लिए जिम्मेदार समाज का विरोध करता है; वह लगातार बदलाव के लिए संघर्षरत है। इस वर्गगत संघर्ष को प्रस्तुत करना प्रगतिशील लेखक अपना कर्तव्य समझता है। जुलाहों की दयनीय स्थिति पर लिखा गया चिदंबरम रघुनाथन का उपन्यास "पंजुम पसियुम" महत्वपूर्ण है। इसके बावजूद आगामी कई वर्षों तक ये विषय अछूते रहे। टी. सैनवराज के उपन्यास "मलरुम सरुगुरु" में ऐसे बंधक मजदूरों की करुण कहानी है जो आजीवन दूसरों के खेतों पर अपना पसीना बहाते हैं पर उन्हें कुछ नहीं मिलता। उनकी चेतना कुचल दी जाती है और यही संघर्ष पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आ रहा है। इस वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जो जागृति हाल में आयी है उसकी ओर कुछ उपन्यासकारों का ध्यान आकर्षित हुआ है। "कुरुदिपुनल" में लेखक इंद्र पार्थसारथी ने दिखाया है कि किस तरह जातिवाद वर्ग संघर्ष पर हावी हो जाता है। श्री कु. चिन्नप्प भारती के "दाहम्" में शोषक भूपतियों के अत्याचारों तथा श्रमिक वर्ग कि तकलीफों का मार्मिक चित्रण है। मार्क्सवादी सिद्धांत का मूल स्रोत मानवता एवं बंधुत्ववाद है। ऐसक अरुमैराजन ने "कीरलगल" उपन्यास में इन सारे संघर्षों का निदान ईसा के बंधुत्ववाद में खोजने का प्रयास किया है। पोन्नीलन का उपन्यास "करिसलगल" उस श्रमिक वर्ग द्वारा भोगी जाने वाली तकलीफों का कहानी है, जो अपने अधिकारों के लिए भूपतियों के खिलाफ आवाज उठाते हैं। पर इन सभी उपन्यासों का अंत श्रमिकों के एकजुट होकर अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने में ही होता है। कई बार मुझे संदेह होता है कि कहीं वे यह तो नहीं सोचते कि यदि श्रमिकों की विजय दिखा दी जाये तो यह व्यावहारिक सत्य से परे की बात होगी।

पिछली शताब्दी से ही पाश्चात्य कला और साहित्य में प्रचलित माडर्निज्म सिद्धांत के तहत अकेले आदमी के आत्मविश्लेषण तथा समाज में अपने अलग अस्तित्व को पहचानने का प्रयास किया गया है। जब उपन्यासकार ऐसे विषय को उठाता है तो वह स्वत: एक नये प्रयोग के रूप में सामने आता है। ऐसे उपन्यासों में कथावस्तु की नवीनता के कारण प्रतीकात्मक तथा फ्लैशबैक शैली का प्रयोग अपरिहार्य हो जाता

है। इन प्रतीकात्मक शब्दों के माध्यम से, उन वाक्यों के बार-बार प्रयोग द्वारा मन के भीतर छिपे तथ्यों को ला. स. राममृतम बाहर खींच लाते हैं। उनके उपन्यास "पुत्र" तथा "अमिता" इसके सशक्त उदाहरण हैं कि पारिवारिक जीवन के बिखराव किस तरह पात्रों के मानस को प्रभावित करते हैं और इनकी परिणति व्यवहार की अस्वाभाविकता में होती है। वे इस स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते चलते हैं। फिर भी वे सतर्क रहते हैं कि संवेदनाओं पर बौद्धिकता हावी न होने पाये। अतीत के साथ जब वे वर्तमान की तुलना करते चलते हैं तो फ्लैशबैक शैली उनका बहुत साथ देती है। नील पद्मनाभन के "तलैमुरैगल", "पल्लिकोंडपुरम्" तथा "उखुगल" में तीखी संवेदनाओं की अपेक्षा केवल शब्दों के माध्यम से ही पात्रों के विचारों को गति दी गयी है।

आज के उपन्यासकारों की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उनके पात्र जब आत्मविश्लेषण करने लगते हैं तो उपन्यास इतना वैयक्तिक हो जाता है, मानो उनके भोगे हुए यथार्थ का हू-ब-हू चित्रण किया गया हो। अक्सर ऐसा लगता है कि इस तरह के उपन्यासकार महसूस करते हैं कि यदि वे पाठक की सुविधा के लिए सहज, सरल और आत्मीय शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो उनकी शैली विशेष में कोई व्यवधान उपस्थित हो जायेगा। नकुलन उन विरले साहित्यकारों में से हैं जो साहित्यिक शैली में आत्मविश्लेषण करते चलते हैं। "निनैवु पादै" और "नायगल" उनके इसी प्रयोग के परिणाम हैं। लेखन लेखक की वैयक्तिकता से कहीं भी अलग नहीं किया जा सकता। आगामी युग में भी यह बात विचारणीय बनी रहेगी। कथा प्रस्तुति में एक निश्चित योजना बनाकर चलने वाले उपन्यासकार कई बार अपने पात्रों के आत्मकथ्य को फ्लैशबैक तथा प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। कथा का प्रवाह इसी तरह आगे बढ़ाते चलने में वे विश्वास करते हैं। आम तौर पर देखा गया है कि जहां उपन्यास उपन्यासकार के ही शब्दों में लिखा जाता है, उपन्यासकार जहां कथावस्तु का दर्शक/वक्ता होता है, वहां किसी नये प्रयोग की आशा नहीं की जा सकती। पर आदवन का उपन्यास "कागिद मलरगल" आत्मकथ्यपरक होते हुए भी उसमें घटनाओं के गठन और चयन में नये प्रयोग किये गये हैं। संचार के सशक्त माध्यम के रूप में सिनेमा किस तरह जनमानस को ही नहीं, अच्छी साहित्यिक रचना को भी प्रभावित कर सकता है, यह उपन्यास में प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिल्मों की सी संपादन (एडिटिंग) शैली का प्रयोग करते हुए लेखक ने विभिन्न पात्रों, उनके क्रियाकलापों, कथोपकथनों और घटनाओं को एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया है।

हालांकि पिछली शताब्दी में शैली तथा कथ्य की दृष्टि से नये प्रयोग करने वाले

लेखक और भी रहे हैं, पर केवल सफल लेखकों का ही उल्लेख यहां किया गया है। समकालीन उपन्यासकारों में शैली की दृष्टि से नये प्रयोगधर्मी लेखकों में अशोकमित्रन का नाम उल्लेखनीय है। उनकी शैली सीधी, सहज और अनलंकृत है। उनकी कहानियां तथा लघु उपन्यास यथार्थपरक घटनाओं का हवाला देते हुए भी केवल वृत्तचित्र ही नहीं रह जाते। उनकी रचनाओं में प्रतीक चित्र तो हैं, पर वे कथा प्रवाह को गति देने में सफल हैं। पात्रों की चारित्रिक विशेषता को उभारते समय वे उनके क्रियाकलापों और विचारों को ही प्रधानता देते हैं। घटनाओं की शृंखला मात्र से वे संतुष्ट नहीं हो जाते। उनके लेखन की विशेषता ही यही रही है कि वे प्रस्तुति की पारंपरिक शैली के विपरीत नये प्रतिमान स्थापित करने में विश्वास रखते हैं। पर इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वे परंपरा विरोधी हैं। समकालीन प्रतिमानों को एक नया दृष्टिकोण देना ही उनका उद्देश्य रहा है। ऐसी घटनाएं भी जो आम तौर पर अर्थहीन-सी लगती हैं, अशोकमित्रन के लेखन में गहन अर्थ पा जाती हैं। जीवन के यथार्थ से कोसों दूर "सेलूलाइड" जगत की बेईमानियां, पानी के अभाव में तकलीफ उठाती जनता, राजनीतिक बदलाव की पृष्ठभूमि में जीने वाले युवक की मानसिकता, पूरी तरह से नकारे जाने के एहसास से कुंठित अकेला आदमी, अशोकमित्रन के उपन्यासों के विषय ऐसी ही यथार्थपरक घटनाएं हैं।

उनके प्रथम उपन्यास का कथानक फिल्म निर्माण से संबंधित रहा और इससे सुविधा यह रही कि उनके अगले उपन्यासों की घटनाओं में पायी जाने वाली विशृंखलता के अर्थ तथा पात्रों की गतिविधियों को विवेचित करने में अच्छी सहायता मिली। फिल्म जगत के कार्य समाज के नैतिक नियमों से मेल नहीं खाते। "करैंद निषलगल" का कथानक-गठन अपनी कथावस्तु के अनुरूप ही उलझा हुआ है। इस उपन्यास में यथार्थ से पलायन के प्रयास को संबल देने वाली फिल्मी कहानियों, उस जगत में पलने वाली अवसरवादी प्रवृत्तियों तथा पात्रों का मृत आत्मानुभूतियों का चित्रण करते हुए, बगैर किसी लाग लपेट के उस जगत के मुंह पर सीधा तमाचा मारा है।

इस प्रयोग में सफलता के बाद "तग्गीर" उपन्यास में भी इसी तकनीक का प्रयोग उन्होंने किया है। मद्रास जैसे महानगर में, जहां सारी वैज्ञानिक सुविधाएं उपलब्ध मानी जाती हैं. जब पानी का भयंकर अभाव हो गया था, तो वहां कितनी करुण स्थिति पैदा हो गयी थी, इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में है। खाली घड़े को लेकर महापालिका के नल के आगे लाइन में घंटों खड़ा रहना, किसी भी औरत की मन:स्थिति को किस तरह प्रभावित कर सकता है, इस पर लेखक ने विचार किया है। और इस पर भी जब जरूरतें पूरी नहीं होतीं, तो उसके लिए आदमी को कितना संघर्ष करना पड़ता है तथा उन संघर्षों के एहसास मात्र से वह कितना कटु हो जाता

है, उसके भीतर का आक्रोश किस तरह फूटता है, इन सारी स्थितियों का यथार्थ चित्रण अशोकमित्रन ने किया है । जब पूरी समस्या का कोई समाधान नहीं मिलता तो यथास्थिति के साथ मूक समझौता कर लेना उनके पात्रों की विशेषता है । प्रभावित पात्रों का ऐसी स्थिति में कैसा आचरण होना चाहिए, इस पर कथाकार का मौन ही उपन्यास की यथार्थवादिता का प्रमाण है ।

स्वतंत्रता संग्राम तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत में नेताओं और जनता की स्थिति पर बहुत उपन्यास लिखे गये । कल्कि के "अलैओसै" में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद की घटनाओं ने जनमानस पर कैसा प्रभाव डाला, इसकी व्यापक चर्चा की गयी है । 1942 के अंत के आंदोलन और उसके परिणामों को अपने अनुभवों के आधार पर उसी शीर्षक से लिखे गये उपन्यास में कु. राजवेलु ने प्रस्तुत किया है । आजादी के लिए शहीद होने वाले महान नेताओं के और विशेषकर गांधी के आदर्श आज की स्वार्थी दलगत राजनीति की रेलमपेल में दब जरूर गये हैं पर यदि आदर्शवादी व्यक्ति को इनके खिलाफ संघर्ष करना है तो गांधी के ही आदर्श उसका साथ देगें । "एंगे पोगिरोम" उपन्यास में अखिलन ने इसी सत्य की ओर संकेत किया है । भौगोलिक दृष्टि से भारत का अंग होते हुए भी विदेशी उपनिवेश बने गोवा के लोगों के संघर्ष की कहानी राजम कृष्णन के "वलैक्करम" में है । "पदिनेट्टावदु अक्षकोडु" उपन्यास हैदराबाद निजाम की महान सल्तनत में संवेदनशील लोगों की तकलीफों, स्वतंत्रता के बाद अपने-अपने अस्तित्व को बनाये रखने की उनकी जिद, उसके फलस्वरूप राजनीतिक आपातकाल और अपनी शक्ति के बल पर उसे अपने आधिपत्य में कर लेने वाली भारत सरकार, इन सबके परिप्रेक्ष्य में एक किशोर की मन:स्थिति का सजीव चित्र है ।

भूमध्य रेखा के उत्तर में अठारहवीं अक्षांश रेखा पर स्थित हैदराबाद शहर में गैरभाषी तथा विधर्मी तमिलनाडु से आ कर बसे हुए कई परिवारों में चंद्रशेखर का परिवार भी एक परिवार था । अपनी उस वय: संधि की स्थिति में वह वहां शिक्षा प्राप्त करता था, जब घटनाएं उसकी मानसिकता को प्रभावित करती हैं । उसके साथी मुसलमान युवक संपन्न घरों के हैं । अपनी भाषा बोलने वाले, परिचित खेल खेलने वाले तमिल लड़कों की अपेक्षा मुसलमान व ईसाई लड़कों की ओर वह अधिक आकर्षित होता है । उनका साथ उसे जैसे सुख देता है । स्कूल की अवस्था से निकलकर कालेज की अवस्था तक आने के बाद, जैसे वह राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति उदासीन है । फिर भी हैदराबाद निजाम की नीति के खिलाफ पनपते वातावरण में वह भी हिस्सा लेता है । उसे विद्रोह के लिए उकसा कर उसका साथी जब पलायन कर जाता है, तो वह जैसे दिशाहीन छूट जाता है । ऐसी स्थिति में युवा मानस की

संवेदनाएं, शारीरिक इच्छाए उस पर कुछ समय के लिए हावी होती हैं। महात्मा गांधी की हत्या की घटना जब गैर हिंदू साथियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती, तो वह पहली बार महसूस करता है कि इस पूरी रियासत में वह गैर करार दिया गया है। हिंदुस्तान की सरकार जब सैनिक शक्ति के प्रयोग द्वारा हैदराबाद की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करती है तो पूरी रियासत में सांप्रदायिक भावना पनपने लगती है। उसका मुसलमान मित्र जब उसके प्रति द्वेष प्रकट करता है और दूसरा तमिलभाषी मुसलमान मित्र उसे सारी परिस्थितियों से अवगत कराते हुए उसे सांत्वना देता है, तब चंद्रशेखर पहली बार स्थान और काल के परिवर्तन का अर्थ समझने लगता है। इससे पहले कि वह उसे ठीक से समझ सकता, उसे एक आंदोलन का हिस्सा बना दिया जाता है। इस आंदोलन का रुख और उसके दौरान अपने लिए अबूझ पहेली बने नारीत्व से उसका सहसा साक्षात्कार, सारी बातें उसके लिए विस्मयकारी हैं। इससे पहले कि वह अपने भविष्य का स्वयं निर्माण करने की उम्र में आये, परिस्थितियां उसे पहले ही परिपक्व बना देती हैं। उसकी स्थिति के माध्यम से हैदराबाद के निवासियों की तत्कालीन स्थिति को खूब उभारा गया है। पात्रों और घटनाओं पर उनकी पकड़ का इससे बेहतर उदाहरण क्या हो सकता है। चंद्रशेखर के अनुभव सहज ही कथाप्रवाह में जब जुड़ते चले जाते हैं तो प्रस्तुति की शैली और दृष्टि में, पाठकों की सुविधा के लिए कुछ परिवर्तन किये गये हैं। जहां लेखक स्वयं बोलता है वहां चंद्रशेखर की समझ के परे की घटनाओं का अर्थ पाठक तक पहुंच जाता है। युवक के अनुभवों की पृष्ठभूमि के रूप में हैदराबाद शहर के कई स्थानों का विवरण उपन्यास को एक विशेषता प्रदान करता है।

"पादिनेट्टावदु अक्षकोडु" अशोकमित्रन के साहित्यिक विकास में एक प्रमुख आयाम है, इसका पता हाल में छपे "आकाश तामरै" को पढ़कर चलता है। अपने को पूरी तरह नकारात्मक परिवेश में पाकर एक युवक का जीवन अर्थहीन-सा लगता हुआ भी कितना सार्थक है, यह उपन्यास में दिखाया गया है। "पदिनेट्टावदु अक्षकोडु" में अशोकमित्रन ने जहां एक युवक के अनुभवों को बगैर किसी टिप्पणी के प्रस्तुत किया है, वहीं "आकाश तामरै" का युवक अपने को अस्वीकृत स्थिति में पाकर भी किस तरह जीवन के प्रति अपना एक दृष्टिकोण रखता है, इसे मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। पितृहीन युवक अपनी माता के मित्र के अकुंश में जीता हुआ जीवन से तंग आकर दिग्भ्रमित हो जाता है। रघुनाथन नाम का वह युवक जब एक ऐसे उद्योगपति से मिलता है जो कुटिल होते हुए भी उदार है तो वह और भी उलझन में पड़ जाता है। उनकी दोस्ती के कारण घटने वाली घटनाएं जब उसकी उलझन को और बढ़ाती हैं, तो वह उन घटनाओं की सार्थकता खोजना छोड़ देता है, क्योंकि

उसके निकट खुद जीवन अर्थहीन है। इस उपन्यास में अशोकमित्रन ने सामाजिक जीवन में प्रतिद्वंद्विताओं के कारण व्यापत मानसिक तनावों को परखा है। "आकाश कुसुम" के प्रतीक के माध्यम से अधूरी रह जाने वाली इच्छाओं की प्रवृत्ति दिखायी गयी है। रघुनाथन को उद्योगपति का अनपेक्षित व्यवहार किस तरह प्रभावित करता है, इसका सुंदर साहित्यिक शैली में चित्रण है।

आवरणहीन शैली तथा प्रतीकों का प्रयोग करने वाले अशोकमित्रन पाश्चात्य साहित्य संपदा से खूब परिचित हैं। एक वर्ष तक वे अमेरिका में आयोवा विश्वविद्यालय के अतिथि लेखक की हैसियत से रहे, तब आंग्ल तथा अमरीकी साहित्य से उनका सीधा परिचय हुआ। उनकी रचनाओं में उस अनुभवजन्य परिपक्वता को पाठक देख सकता है। युवा लेखकों का तीखापन, स्पष्टवादिता तथा जिज्ञासा जैसे गुण अशोकमित्रन में हैं। पर वे लिखते अनुभवजन्य परिपक्वता के साथ ही हैं। "पदिनेट्टावदु अक्षकोडु" में हमारे देश के राजनीतिक इतिहास की संकटपूर्ण स्थिति-विशेष का विवरण एक ऐसे युवक की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है, जो वहां जन्मा नहीं पर रह जरूर रहा है। यह उपन्यास आज के तमिल साहित्य की प्रगति का सशक्त प्रमाण है।

—पे. को. सुंदर राजन
(चिट्टी)

मद्रास
1 अप्रैल, 1981

आमुख

इस उपन्यास को आज से तीस साल पहले भी लिख सकता था। पर सोचता हूं, तो लगता है अच्छा किया जो नहीं लिखा।

कई बार सोचा, तीस साल पहले जिस भूमि को पीछे छोड़ आया था, वहीं जाकर कुछ दिनों के लिए रहूं, और उपन्यास पूरा करूं। पर अब यही लगता है, वैसा न करके ठीक ही किया। मैं नहीं जानता तीस वर्ष पूर्व की घटनाओं और संस्मरणों को रचना में ढालने की प्रक्रिया में वर्तमान कितनी दूर तक सहायक बन सका है। हो सकता है यह उपन्यास कभी लिखा ही नहीं जाता।

इस उपन्यास के कथाकाल सन् 1930 और चालीस के दौरान, इसकी कथाभूमि में ही, मेरा बचपन बीता है। पर सिर्फ इसी से यह आत्मकथा नहीं बन सकता। आत्मकथा और उपन्यास की सीमा रेखा के विषय में मेरा अपना मत है। वैसे देखा जाये तो सभी उपन्यास आत्मकथात्मक ही होते हैं।

दुख के कई कारणों की चर्चा की जाती है। उनमें एक है, टालना। अनंत काल के लिए किसी चीज को टालते जाना, उसे खो देना है। पर जहां तक इस उपन्यास का प्रश्न है, मैंने इसे टाल कर ठीक ही किया।

पूरे सात महीनों तक विदेशी परिवेश, भाषा और संस्कृति के बीच जीते हुए इस उपन्यास को लिखना जैसे जरूरी हो गया। मैं आयोवा विश्वविद्यालय का बहुत आभारी हूं।

तमिल साहित्य के भविष्य में आस्था रखने वाले मेरे परम मित्र श्री ति. क. सी. के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं। उनके साथ बैठकर इस उपन्यास पर जो चर्चा की थी उसका ही परिणाम है इसका तीखापन। मित्र श्री एस. कृष्णन का भी आभार प्रकट करता हूं। अतीत के ऐतिहासिक पात्रों, घटनाओं के चित्रण में जिस दृष्टि और दक्षता की आवश्यकता है वह उनके संसर्ग का ही परिणाम हैं। अगर उपन्यास में खामियां हों, तो वे मेरी अपनी हैं।

श्री. कस्तूरीरंगन ने इस उपन्यास को "कणैयाषी" में धारावाहिक छापा था। अगर

उनकी प्रेरणा न होती तो शायद इस उपन्यास को छपने में और कई साल लग जाते।

मेरा यह उपन्यास इन्हीं तीनों को समर्पित है।

– अशोकमित्रन

मद्रास
30 अप्रैल, 1977

"हिंदोस्तां की सरकार ने क्या निजाम की रियासत का ठेका लिया है ? कल तक जो जेल में बंद थे, आज शाही रियासत से टक्कर लेना चाहते हैं। सात पुश्तों से चले आने वाले इस शाही खानदान पर हिंदोस्तानी सरकार का यह जुल्म अब और नहीं चलने वाला। हमारे रुस्तमी दीवान अरस्तुरजामन मुसफ्फरल मुल्कवाल मुमय्यिक फतह जंग सिपहसालार मीर उसमान अली खान बहादुर निजामुल मुल्क असफ्फज़ा के पैर बंगाल की खाड़ी जल्द ही चूमेंगे। अरब सागर की लहरें उनके मखमली नागरों को भिगोयेंगी। दिल्ली के लाल किले पर असफ्फज़ा का पाक झंडा फहराया जायेगा।"

– एक रज़ाकार के भाषण से ; 1949

1

'दोस्त, आज नेट प्रैक्टिस है। जरूर आ जाना।' नासिर अली खान सुबह कह गया था। इस साल कालेज की क्रिकेट टीम का कप्तान वही था। मोइनुद्दौला कप प्रतियोगिता में, कई पुराने खिलाड़ियों के बीच वह दसवें नंबर पर गया था; पर दस मिनट में उसने तैंतीस रन बना लिये थे और नाट आउट रहा था। चार सौ लड़कों के बीच मुश्किल से चार छात्र क्रिकेट खेलने आते हैं। इस साल तो क्या, अब आने वाले दस सालों तक नासिर ही कप्तान बना रहेगा, इसमें कोई शक नहीं। शाम को नेट प्रैक्टिस के वक्त भी वह रेशमी कमीज और फलालेन की पैंट में आता है। हालांकि चंद्रशेखर के खेल के बारे में उसने कभी नहीं सुना, पर वह उसे प्रैक्टिस के लिए कई दिनों से बुलाता रहा है। नासिर अली खान के जाने के बाद चंद्रशेखर साइकिल स्टैंड तक जाकर साइकिल के पहियों की हवा देखने लगा। 'शुक्र है, हवा अभी काफी है।'

दोपहर के दोनों पीरियड कैमिस्ट्री प्रैक्टिकल्स के हैं। इसकी सबसे बड़ी सुविधा यह है कि इस पीरियड में आखिर तक प्रोफेसर की आंखों में दिखते रहने की जरूरत नहीं रहती। चंद्रशेखर नमक को टेस्ट ट्यूब में डाल कर चार बार हाइड्रोजन सल्फाइड लेने चला गया। सल्फाइड के पड़ते ही नमक का टुकड़ा काढ़ा बन गया। नमक को पहचानने के लिए यह प्रयोग आम तौर पर किया जाता है। नमक की जाति तो पहचान ली जाती है, उसके बाद वह किस धातु का नमक है, यह पहचानने के लिए और प्रयोग करने होंगे। पिछली बार भी यही प्रयोग दिया था। पर इस बार का प्रयोग तो बड़ा टेढ़ा है। पूरे प्रैक्टिकल में बीस जोड़ी छात्र मौजूद हैं। उनमें से चार-पांच तो पहचान ही लेंगे। फिर बाद में बाकी लोग अपने आप पहचान लेते हैं।

ठीक सवा तीन बजे ही चंद्रशेखर ने किताबें समेटीं और साइकिल स्टैंड तक गया। बूढ़े ने साइकिल निकालने से मना कर दिया।

'मुझे क्रिकेट प्रैक्टिस करनी है। इसलिए घर होकर आना जरूरी है', चंद्रशेखर ने कहा।

'मैं कुछ नहीं जानता। चार बजे आकर भले ही ले जाओ।'

चंद्रशेखर ने बूढ़े को ऊपर से लेकर नीचे तक एक बार गौर से देखा। पाँच फुट का होगा मुश्किल से। गंदा पाजामा, घुटनों तक झूलता मैला-कुचैला कुरता। सफेद दाढ़ी-मूंछ। कुछ नहीं तो चार-पांच दांत तो गायब होंगे ही। लगातार बीड़ी पीते रहने के कारण दोनों आंखें भीतर को धंसी थीं। कंचे जैसी चमकदार आंखें। यही बूढ़ा, कई लोगों को सलाम ठोंकता है और चमचागिरी करता है। कभी साइकिल पोंछता है, तो कभी तेल लगाकर उन्हें चमकाता है। कभी हवा भरता है, कभी किताबों की रखवाली, तो कभी पान लाता है। कभी-कभी तो मोटर को धक्का भी लगाता है। बस, रंग साफ हो, ट्वीड का पैंट हो और उर्दू बोलता हो, खान, अली या मुहम्मद का खानदानी बेटा हो, तो इसकी दुम हिलने लगती है। चंद्रशेखर ने जेब से दुअन्नी निकाली और उसे पकड़ायी। बूढ़े ने रास्ता दे दिया। चंद्रशेखर जब साइकिल लेकर बाहर निकला तो वह यूं खड़ा था, मानो उसने उसे देखा ही न हो।

कालेज से टैंक बंड तक आने में केवल पांच मिनट लगे। अब पूरा एक मील टैंक बंड का रास्ता है। हुसैन सागर शांत था। उसके तट पर बनी इस सड़क पर तेज हवा चल रही थी।

हालांकि, हवा के झोंकों से उसकी आंखें लाल हो रही थीं, पर चंद्रशेखर को यह सड़क बहुत प्यारी लगी। झील के किनारे विशालकाय पत्थरों को खड़ा कर एक बांध-सा बना दिया गया था। उसके ऊपर से ही यह सीमेंट की सड़क बनी थी। किनारे पर एक मील की लंबी रेलिंग लगी थी। तीन-चार जगह बालकनी-सी बना दी गयी थी। शाम को वहां आकर बैठना बहुत सुखद लगता। पर इस सुख के लिए घर से तीन-चार मील का रास्ता तय करके इतनी दूर आना भी खल जाता। अभी तो बहुत दिन बाकी हैं इस सुख को महसूस करने के लिए। उसने सोचा प्रैक्टिस खत्म होने के बाद तीन-चार मिनट बैठने की कोशिश करेगा।

'इतनी जल्दी लौट आये ?' मां का सवाल था। चंद्रशेखर ने जवाब नहीं दिया। बक्सा खोल कर सफेद पैंट निकाल ली।

'क्रिकेट खेलने जा रहे हो क्या ?'

चंद्रशेखर चुप रहा।

'तुम तो कह रहे थे उस मैदान पर मुसलमान लड़के तुम लोगों को मारने आते हैं ?'

'नहीं, आज कॉलेज में ही खेलना है।'
'कॉलेज ? तो क्या इतनी दूर लौटकर जाओगे ?'
'हां !'
'तो फिर एक काम करो, भैंस को पिछवाड़े बांध आओ। चरवाहा खुला ही छोड़ गया है।'

चंद्रशेखर चौंककर पिछवाड़े की तरफ भागा। पीछे एक खाली मैदान है और उसके पार एक चर्च और चार-पांच बंगले बने हैं। पिछले हफ्ते ही की तो बात है, चरवाहा भैंस को यूं ही छोड़कर चला गया था और यह टेढ़े सींगों वाली भैंस चर्च के बगीचे में घुस गयी थी। माली ने जमकर पिटाई की और तीन मील दूर पुलिस चौकी पर छोड़ आया। तीन रुपये भरने पडे। ऊपर से दो दिन उसकी ढुंढ़ाई में लगे। सारा शहर छान मारा मगर माली ने जुबान तक नहीं हिलायी। दोबारा उससे जब वह पूछने गया, तो उसने धमकी दी थी कि अगली बार तो वह भैंस को जान से मार डालेगा।

चंद्रशेखर सबसे पहले तो चर्च के बगीचे तक गया। अच्छा हुआ भैंस वहां नहीं थी। पर क्या खाक अच्छा हुआ। पता नहीं कहां मरने चली गयी होगी। किसी बदतर जगह पहुंच गयी हो तो ?

'यह मां भी अजीब है। जब मुझे जल्दी होती है तभी वह ऐसे काम भी निकालेगी', वह बुदबुदाया। वह साइकिल लेकर निकला। मां ने लोहे की करछुल पानी में डाल दी।

साइकिल पर बैठे-बैठे ही चंद्रशेखर ने चारों बंगलों की दीवार के पार उचक कर देखा। अब की बार भैंस मुहम्मद कासिम, हैदराबाद पुलिस के बंगले में उगे क्रूटंस चाव के साथ चबा रही थी।

चंद्रशेखर ने साइकिल बाहर छोड़ दी। खुले गेट से चुपचाप भीतर गया और भैंस के सींग धीमे से पकड़ लिये। भैंस ने उसकी ओर देखा तक नहीं। एक पत्थर उठाकर उस पर फेंका। भैंस ने अब उछल कर छलांग लगायी और चार-पांच गमलों को गिराती हुई बाहर की ओर भागी। चंद्रशेखर भी भागकर भैंस के पीछे-पीछे आया। वहां ड्यूटी पर खड़े पुलिस वाले ने उसे लपककर पकड़ लिया।

'अब माफ भी कर दो भाई', चंद्रशेखर गिड़गिड़ाया। पुलिस वाले ने झांक कर नुकसान का अंदाज लगाया और उसकी कमीज पकड़कर बोला, 'चलो भीतर साहब के पास।' चंद्रशेखर दोबारा गिड़गिड़ाया। 'भूल हो गयी। माफ करना भाई।' इस बीच गोरी-चिट्टी, नाटी पर मोटी सी औरत बाहर आयी और पुलिस वाले पर उर्दू में बरस पड़ी, 'गधा, सुअर', जैसी गालियां देती हुई, वह बगीचे का चक्कर लगाने

लगी। पुलिस वाला उसके पीछे लग गया। चंद्रशेखर की समझ में नहीं आया, आखिर वे उससे चाहते क्या हैं ? जब वह औरत और पुलिस वाला दोनों ही पिछवाड़े की ओर निकल गये तो मौका देखकर चंद्रशेखर ने साइकिल उठायी और भाग निकला। भैंस जुगालती हुई घर की ओर जा रही थी। चंद्रशेखर ने भी धीमे से साइकिल बढ़ायी। भैंस को उसने पिछवाड़े में बांधा और एक चैला उठा लिया।

'नहीं रे, छोड़ दे। बेचारी बेजुबान है।' मां बोली। चंद्रशेखर ने चैला फेंक दिया और भैंस की ओर देखकर एक गाली उछाल दी। भीतर आकर उसने पैंट और कमीज पहन ली।

'इतनी दूर जाओगे, नाश्ता तो कर लो।' मां बोली।

'नाश्ता-वाश्ता कुछ नहीं चाहिए।' झल्लाते हुए चंद्रशेखर ने जूते पहने।

'तो फिर चाय तो पीते जाओ।' मां ने दोबारा कहा।

'तो फिर दो न। कब तक दुलराओगी ?' चंद्रशेखर चीखा।

इस बीच उसके भाई-बहन अपने-अपने स्कूलों से लौट आये। आते ही पिच्चुमणि ने चंद्रशेखर के जूते उठाये और खुद पहनने लगा। चंद्रशेखर ने एक झापड़ कसकर लगाया और पिच्चुमणि चीखने लगा।

'तुम्हें किसी पागल कुत्ते ने काट खाया है, जो इस तरह सब पर बिगड़ रहे हो ?' मां रसोई से चिल्लायी।

'हां, मुझे पागल कुत्ते ने काट खाया है, बस।'

चंद्रशेखर ने जल्दी से जूते पहने और साइकिल की ओर लपका।

'तुम्हें कुत्ते ने नहीं, शनि ने ग्रसा है।' मां बोली। ज्योतिषियों ने कहा था कि उस पर साढ़े साती का प्रकोप प्रारंभ हुआ है। अब जिस घर में शादी लायक लड़कियां हों, उस घर में ज्योतिषियों का आना-जाना भी लगा ही रहता है। मां भी इन लोगों के चक्कर में आ जाती है।

इस बार टैंक बंड के सामने की हवा धीमी थी। यह कुछ अजीब-सी बात थी। ऐसा तो कभी नहीं होता था। बस में यही हवा प्यारी लगती है, पर बस भी तो आधे घंटे में आती है। घर से बस स्टैंड की दूरी लगभग एक मील होगी। फिर उसे जब साढ़े चार से लेकर साढ़े छः तक प्रैक्टिस करनी है तो बस के भरोसे कैसे रहा जा सकता है ? ऊपर से छः आने का खर्चा। घर कॉलेज के पास हो तो बढ़िया रहता है, पर क्वार्टर तो पिताजी के दफ्तर के पास मिलेगा। फिर उसी घर में रहते सालों गुजर गये। एक ही घर में रहते-रहते जो अंड-संड सामान जुड़ जाते हैं, वे सभी उसके घर में मौजूद थे।

बस, टैंक बंड खत्म होने ही वाला है। घर से कॉलेज पांच मील दूर है, पर ध्यान

में बस यही एक मील रह जाता है। एक ओर हुसैन सागर और दूसरी ओर गहरी खाई। न कोई मकान न दुकान। यही वजह है कि इस दूरी का एक-एक इंच भीतर धंस जाता है। एक घंटे के भीतर इस तरह दस मील का चक्कर लगाकर भी न उसने ढंग से नाश्ता किया है न चाय पी है, क्या खाक खेल पायेगा वह। पर हफ्ते भर तक यूं ही वह चला भर जाये, तो 'ए' टीम में न सही, 'बी' टीम में तो जगह मिल जायेगी। वह खुद किसी टीम का कप्तान रह चुका है और अब 'बी' टीम में पता नहीं किस गधे की कप्तानी में खेलना होगा। 'मेरी शुरुआत कभी ठीक नहीं रहती। दो तीन ओवर के बाद ही मैं संभलता हूं।' पर कोई नया कप्तान इस बात को भला क्या समझे ! वह उर्दू में झाड़ेगा। अपनी टूटी-फूटी उर्दू में उसे समझाया भी नहीं जा सकता। पर नासिर अली खां की बात कुछ और है। वह समझ लेगा। पता नहीं, कहां उसने उसके बारे में सुना होगा। तभी तो आज उसे बुलाया है। इस साली भैंस को, चरवाहा बांध जाता तो क्या यूं खाली पेट उसे आना पड़ता ! सब शनिचर की माया है। पता नहीं कितने दिन और उसे क्रिकेट खेलना है। चंद्रशेखर टैंक बंड पार कर रोस बिस्कुट फैक्टरी के किनारे वाली सड़क पर मुड़ गया। बिस्कुट कंपनी के मैदान में, लगभग पचास लोग कतार बांधकर खड़े थे। नाटे, लंबे, दुबले-मोटे, जवान-बूढ़े ऐसे न जाने कितने। पाजामा, पैंट शेरवानी-कमीज, कितनी ही वेश-भूषाएं। सभी एक बांस के टुकड़े को कंधे पर बंदूक की तरह ताने हुए। हैदराबाद पुलिस का एक वरिष्ठ अधिकारी उन्हें प्रशिक्षण दे रहा था।

चंद्रशेखर के शरीर में एक झुरझुरी-सी उठी। ठीक इसी तरह का प्रशिक्षण उसके घर के पास बने मैदान में भी दिया जाता है। पता नहीं, पिछले कुछ दिनों में, कितने नये चेहरे हैदराबाद और सिकंदराबाद में भरते चले जा रहे हैं। सिकंदराबाद स्टेशन रोड के किनारे बांस और नारियल के पत्तों से बनी छोटी-छोटी झुग्गियों में लोग भरे पड़े हैं। पिताजी चाचाजी से उस रोज कह रहे थे कि ठीक इसी तरह कई लोग काजीपेठ के स्टेशन में भी भरे पड़े हैं। ये लोग शायद नागपुर की ओर से आये हैं। गरीब मुसलमान। टैंक बंड के इस पार इस तरह के लोग झुंड के झुंड दिखाई देते हैं। साफ पता लगता है कि ये हैदराबाद के नहीं हैं, बाहर से आये हैं। क्रिकेट का खेल और नहीं चलने वाला। पता नहीं क्यों नासिर खान ने उसे बुलाया है।

पता नहीं, शायद वह भी इस प्रशिक्षण शिविर में जाता हो, उसने सोचा।

पर वह तो जागीरदार का बेटा है। वह भला क्यों ढीले-ढाले पाजामे-कुरते में लेफ्ट राइट करेगा ?

अक्सर उसकी भी इच्छा होती है कि वह भी लेफ्ट राइट में शामिल हो जाये। पर कॉलेज के प्रथम वर्ष में उसे 'आक्सलरी कोर' तक में जगह नहीं मिली। उसे कमजोर

करार देकर टरका दिया गया था । इस साल कई लोगों को लिया गया । गरमी की छुट्टियों के बाद जब इस बार कॉलेज खुला, तो एक अनजाना-सा तनाव पूरे परिवेश में छा गया था । पूरे हिंदुस्तान में अगस्त का महीना जो संदेश लेकर आया, वह मानो इस प्रांत के लिए नहीं था । तिरूवितांकूर स्वतंत्र हो रहा है । जूनागढ़ हिंदुस्तान से अलग रहना चाहता है । कशमीर का सवाल ही नहीं उठता । तिरूवितांकूर में काफी बलवा हुआ है । सर सी. पी. पर किसी ने छुरे से वार कर दिया । कौन हैं यह सी. पी. ? दीवान ! तिरूवितांकूर के दीवान । बंगाल में पांच सौ लोग मार डाले गये । सिंध वाला हैदराबाद पाकिस्तान में है । दक्षिण का हैदराबाद स्वतंत्र देश है । अगस्त चौदह की मध्य रात्रि । चंद्रशेखर और उसके परिवार के अन्य सदस्य अपने टूटे-फूटे रेडियो में दिल्ली के लाल किले में तिरंगे के आरोहण का आखों देखा हाल सुन रहे हैं । वंदे मातरम् । जय हिंद । एक यह रेडियो । घर्र-घर्र किये जा रहा है । बंद करो इसे । क्या खाक सुनें ? अगस्त से उसकी साढ़े साती शुरू हो रही है । उसे सतर्क रहना होगा, उसने सोचा । शहर का हाल भी ठीक नहीं है । क्रिकेट तो बस अब बंद होने ही वाला है ।

टैंक बंड पार करते तो कुछ भी नहीं हुआ, पर बशीर बाग के पास आते ही सांस फूलने लगी । पचास गज की दूरी पर कॉलेज है । चंद्रशेखर थक गया । साढ़े चार हो चुके हैं । घड़ी होती तो वक्त का पता लगता । पर पिताजी कहां लेकर देंगे । पिछले साल तो साइकिल दिलवायी थी । अरे, साइकिल में बचत होती है, एक दिन में छः आने के हिसाब से । कम से कम महीने में दस रुपये से ऊपर बच जाते हैं । नयी साइकिल भी 130 रुपये में आती है । पर अभी तक वार क्वालिटी की साइकिलें ही बाजार में बिकती हैं । हिंदुस्तान स्वतंत्र हो गया । पर यहां कब आयेगी वह स्वतंत्रता ? पिछले कुछ दिनों में आस-पास के शहरों से अनगिनत लोग यहां आकर इकट्ठे होते जा रहे हैं । अगर यहां आकर इन ढीले-ढाले कपड़ों में इन्हें लेफ्ट राइट ही करना था, तो हो सकता है ये इससे बदतर जगहों से आये हैं । इन्हें क्या कहा जाता है ? रिफ्यूजी, इसके क्या हिज्जे होते हैं . . . ?

चंद्रशेखर ने गेट के आगे साइकिल बढ़ायी । विज्ञान कक्ष के आगे ही मैदान पड़ता है । मैदान में काफी लोग नजर आ रहे थे । अगले हिस्से में उतने नहीं, जितने पिछले हिस्से में । नेट वहीं पर तना है । पिछले साल चंद्रशेखर दर्शक की हैसियत से आया था । आज पहली बार खिलाड़ी की हैसियत से मैदान में उतर रहा है । मैदान के बीच से साइकिल निकालना मना है । घूमकर ही जाना होगा । आज ही इतनी भीड़ है, या रोज इतनी होती है ? उसकी बारी आते-आते तो सात बज ही जायेंगे । आज क्या खाक खेल पायेगा वह ? इस चरवाहे के बच्चे को भी आज ही अपनी

कामचोरी दिखानी थी ! भैंस तो मिल गयी । चलो अच्छा हुआ, वरना क्या वह आ पाता ?

नासिर अली खान की आंखों में आत्मीयता अब कुछ कम थी । सुंदरसिंह, जैकब, निज़ाम यार खान, सभी आये थे । और भी न जाने कितने ही लड़के थे । सभी नवाबों के स्कूल से इस कालेज में आये थे । आज भी निजाम के दोनों पोते यहीं पढ़ते हैं । उनके लिए स्कूल और कालेज में कोई अंतर नहीं है । सभी सफेद कमीज-पैंट और क्रिकेट के जूते पहने थे । तीन गेंदें थीं । तीनों गेंदबाज लगातार गेंदें फेंक रहे थे । इतिहास का कोई छात्र बैटिंग कर रहा था ।

'बहुत देर कर दी दोस्त ।' नासिर अली खान बोला । पर उसने जब गेंद चंद्रशेखर के हाथ में दी, तो वह शांत था । चंद्रशेखर एक मिनट के लिए रुक गया । फिर बोला, 'मैं बाउलिंग नहीं करना चाहता ।' नासिर अली खान ने गेंद दूसरे खिलाड़ी की ओर उछाल दी और उसकी ओर मुखातिब होकर कुछ कहा । चंद्रशेखर चुपचाप खड़ा रहा । नासिर अली खान ने इस बार कुछ जोर देकर कहा, 'आई से बैट अप ।' चंद्रशेखर चौंक गया । उसने पैड उठाकर पहन लिया । एक अच्छा-सा बल्ला चुन कर मैदान में उतर गया । हो सकता है, कई लोगों को बुरा लगा हो ।

2

इसके पहले कि मैं आपको अपना क्रिकेट इतिहास सुनाऊं, अपने मकान की स्थित समझा दूं। वैसे तो हम लगभग हर साल मकान बदलते रहते थे, पर मुझे याद है, जब मैं कुल बारह साल का था तो शहर से दूर बसी इस बस्ती में हम लोग ठेले में सामान लाद कर चले आये थे। पिताजी को सरकारी मकान मिल गया था। यह बस्ती रेलवे स्टेशन, बाजार और स्कूल से लगभग डेढ़ मील दूर पड़ती थी। इसे 'लांसर बैरक्स' कहते थे। शुरू-शुरू में मुझे यह नाम किसी गाली से कम नहीं लगता था। ऊबड़-खाबड़ जगह थी वह। लगभग दस एकड़ की ! चारों ओर तीन फुट की चारदीवारी। बीच में दो कतारों में बने खपरैल के मकान। बीच-बीच में दीवार उठा कर उन्हें चौबीस कोठरियों में बदल दिया गया था। यही था लांसर बैरक्स।

पता नहीं किस सदी में उसका निर्माण हुआ होगा। लगता था, मकान दस फुटे आदमी के रहने लायक बनाया गया था। दरवाजे पर सिटकनी लगानी हो तो स्टूल या कुर्सी की मदद लेनी पड़ती थी। ऊपर बीस-पच्चीस फुट ऊंची खपरैल की छत तनी थी। एक-एक दवीर की मोटाई लगभग दो फुट की थी। घर के जालों को साफ करने का सवाल ही नहीं उठता था। झुटपुटी रोशनी में भी अगर छत की ओर नजर पड़ जाती तो भय-सा लगता था। बाद में पता लगा ये मकान गोरे सिपाहियों के लिए खास तौर से बनाये गये थे। हो सकता है उनके बरछी-भालों की लंबाई-चौड़ाई को ध्यान में रखकर ये छतें बनायी गयी हों।

खैर कुछ भी रहा हो, बाद में यह रेलवे की संपत्ति बन गयी और हमारे पिताजी भी उसके हकदार हो गये। पिताजी कहते थे उन्हें यह हक पूरे पंदरह वर्षों के बाद मिला है।

बैरक्स के और लोगों को भी मकान बरसों बाद मिला था। हमारे मकान की लाइन में दो तमिल परिवार, तीन ईसाई परिवार, चार मुसलमान परिवार और एक पारसी

परिवार था। बाकी वही ईसाई, पारसी, मुसलमान, नायडु वगैरह। (क्या तेलुगु बोलने वाले सभी नायडु होते हैं ?) हमारा बैरक्स शहर के बाहर के मैदान में बसा हुआ था। इससे भी आगे एक बड़ी चारदीवारी के भीतर एक गिरजाघर तथा पांच-सात बंगले थे। चर्च के आगे लगभग आधे मील की दूरी पर ईसाई कब्रिस्तान था। पर पता नहीं क्यों कोई उसका उपयोग नहीं करता था। कितनी झाड़-फूस उग आयी थी वहां। कई तरह की कब्रें वहां बनी हुई थीं। बचपन में मैं और मेरा छोटा भाई दोनों ही दीवारें फांद कर भीतर चले जाया करते थे। बीसवीं सदी की कब्र तो एकाध ही वहां होगी। वरना सभी अठारहवीं सदी की कब्रें थीं। अधिकतर कब्रें सिपाहियों की थीं। ऐसा लगता था, हमारे बैरक्स के सिपाही ही अधिक संख्या में खेत रहे थे। कभी-कभी तो एक-एक कब्र पर तीस नाम तक खुदे होते थे। इससे अंदाजा लगाया जा सकता था, कि वहां कितने अधिक लोग एक जमाने में रहा करते थे। या तो वे युद्ध में खेत रहे होंगे, या फिर हैदराबाद में फैलने वाली आम बीमारी, प्लेग से मरे होंगे। बस इससे आगे केवल मैदान ही मैदान नजर आता था। दूर छोटी-मोटी पहाड़ियां थीं। कुल मिलाकर यह प्रदेश भूत-प्रेतों का डेरा लगता था। इसी मैदान में चरवाहे गाय-भैंस चराने ले जाया करते थे।

हमारे बैरक्स की चारदीवारी में हालांकि खाली जगह तो बहुत थी, पर ऊबड़-खाबड़ अधिक थी। बुजुर्ग लोगों ने सीधी जमीन पर तो बैडमिंटन कोर्ट बनवा लिया था। लिहाजा बची हुई ऊबड़-खाबड़ जगह में, मैं और संदानम् पहले क्रिकेट खेला करते थे। संदानम् हमारे ही ब्लाक के आखिरी मकान में रहता था। मेरा सहपाठी था। उसका भी एक ही भाई था और मेरा भी। मेरी बहनें थीं। पर उसकी कोई बहन नहीं थी। मेरा भाई तब बहुत छोटा था। इसलिए मैं, संदानम् और उसका भाई, तीनों ही किसी दीवार पर कोयले से तीन लाइनें खींच कर विकेट बना लिया करते थे। एक पतली लकड़ी लेकर टेनिस की गेंद से क्रिकेट खेला करते थे। आप इस भ्रम में मत रहिये कि हम क्रिकेट बरसों यूं ही खेलते रहे। ऐसा नहीं था। मुश्किल से एकाध महीना ही ऐसे खेले थे।

हालाँकि हम तीन थे। फिर भी बैटिंग का निर्णय हम दोनों के बीच ही होता था। संदानम् का भाई हमेशा तीसरे नंबर पर खेला करता था। अगर संदानम् पहले खेलता तो हम सबका खेल आधे घंटे में खत्म हो जाया करता था। पर अगर मैं पहले खेलता तो पूरा दिन भले ही गुजर जाये, खेल खत्म होने में नहीं आता था। इसकी वजह यह कतई नहीं थी कि मैं अच्छा खेलता था, इसका पूरा श्रेय संदानम् की बाउलिंग को जाता था।

संदानम् की बाउलिंग के बारे में अगर आप जानना चाहें तो पहले भारत का नक्शा

दिमाग में लाइये। सिंकदराबाद की उत्तरी सीध में दिल्ली है। मान लीजिये,मैं बल्ले के साथ दिल्ली में खड़ा हूं और संदानम् को सिकंदराबाद से गेंदबाजी करनी है। पता नहीं कहां से दौड़ लगाकर आता और गेंद फेंकता। गेंद या तो कलकत्ता लुढ़कती या फिर कराची। अक्सर वह कराची की दिशा में ही गेंद फेंकता। हो सकता है इसमें शारीरिक बनावट का भी हाथ रहता हो। नतीजा यह होता कि बल्लेबाजी के लिए मुझे भी दिल्ली से दौड़कर कराची जाना पड़ता और गेंद उछल कर अफ्रीकी देशों में पहुंच जाती। संदानम् भाई को डपटता।'मैं यहां जान लगा कर गेंदबाजी कर रहा हूं और तुमसे गेंद तक लपकी नहीं जाती।' मेरी बल्लेबाजी पर उसे तनिक भी तरस नहीं आता। गेंद के विकेट पर लगने का सवाल तो उठता ही नहीं था। पर गेंद को लपकने के लिए वह बढ़ता। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, गेंद जमीन को छू जाये या दो तीन बार टप्पा खा जाये। टप्पा खाने के बाद भी अगर गेंद हाथ लग जाती तो आउट मान लिया जाता। दरअसल हम क्रिकेट नहीं खेलते थे। संदानम् का भाग कर गेंदबाजी करना, मेरा लपक कर बल्लेबाजी करना और उसके भाई का उसे रोकने के लिए भागना, सभी दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने वाले लगते।

संदानम् की गेंदबाजी अक्सर झुंझलाने वाली बात तो अवश्य थी पर इस कारण से मैंने उसके साथ खेलना कभी नहीं छोड़ा। हमारा खेल सहसा बंद हो गया। इसके कई कारण थे। लांसर बैरक्स में रहने वाले और लड़के भी निमित्त बन गये।

ईसाई और मुसलमान लड़के, हमारे बैरक्स में कुल मिलाकर दस-पंदरह थे। मैं उनसे किसी भी भाषा में बात नहीं कर पाता था। संदानम् तमिलभाषी था। ऊपर से उसे न अंग्रेजी आती थी न उर्दू। इसी कारण से हम दोनों दोस्त थे। और हमारा खेल बदस्तूर चलता रहता था। शुरू में कुछ दिन तो हमारा खेल चलता रहा। बाद में ईसाई और मुसलमान लड़के दीवार पर बैठकर हमारे खेल का जायजा लेने लगे। उनको हंसी आती थी। संदानम् का भागकर आना, मेरा गेंद का पीछा करना, संदानम् का भाई को डांटना-डपटना। उनका अच्छा खासा मनोरंजन होता था। मैं अगर उनके बीच बैठकर खेल देखता तो शायद मुझे भी वैसा ही लगता। वे हड़काते। अक्सर 'बोम्मन' 'बोम्मन' कहकर चिल्लाते। जिस किसी को उनकी भाषा नहीं आती उसे वे 'बोम्मन' कहकर ही छेड़ते। उनके लिए संदानम् बड़ा 'बोम्मन' था और मैं छोटा 'बोम्मन'। उनकी छेड़खानी जितनी अधिक होती, संदानम् की गेंदबाजी उतनी बदतर होती। मैं खुद झुंझलाकर बोलता, 'सीधी गेंद नहीं फेंक सकते ?'

संदानम् भी झुंझलाता, 'मैं भी तो जान लगाकर गेंद फेंक रहा हूं।'

वह जितनी जान देता, लड़कों की छेड़खानी उतनी ही बढ़ती जाती। उनमें भी

मॉरिस नाम का लड़का बहुत शैतान माना जाता था। बैरक्स की चारदीवारी के भीतर ही वह सिगरेट पीता। संदानम् जब गेंद फेंकता तो या तो वह मेरी ओर देख कर पत्थर फेंकता, या फिर संदानम् की ही तरह शरीर को बल देकर उसके साथ दौड़ने का अभिनय करता। एक बार तो उसने संदानम् के हाथ से गेंद छीन ली और स्वयं गेंदबाजी की। उसने गेंद छीनी नहीं कि सभी लड़के मेरे हाथ से बल्ला छीनने लपके। मैं भला क्यों चूकता। पूरे बैरक्स का चक्कर लगाता हुआ दौड़ने लगा। वे सभी उम्र में मुझसे बड़े थे। आसानी से मेरा बल्ला छीन लिया गया और वे खेलने लगे। वैसे, वे हमसे बेहतर खेलते थे।

कुछ दिन तो हम उनसे आंख बचाकर खेलते रहे। पर क्रिकेट एक ऐसा खेल है जो छिपकर नहीं खेला जा सकता। एक बार हमारी गेंद और बल्ले की आफत आ गयी। मॉरिस की बल्लेबाजी में बल्ले के दो टुकड़े हो गये।

संदानम् सीधा घर गया और जिद करने लगा, 'मेरा बल्ला वापस करो, वरना अपने पिताजी से कहकर तुम्हारे बाप को पिटवा दूंगा।'

मैं भला कैसे चूकता, 'मैं भी अपने पिताजी से कहकर तुम्हारे पिताजी को पिटवा दूंगा।' बहरहाल, हम दोनों के पिताजी कभी नहीं झगड़े। पर हम दोनों के संबंध खत्म हो गये। उसके बाद हम और संदानम् सालों मिलते रहे, पर बोलचाल कभी नहीं हुई। मैंने संदानम् को उसके बाद खेलते नहीं देखा। उसने चश्मा लगाना शुरू कर दिया था। हो सकता है, एक कारण वह भी रहा हो।

पर मुझसे रहा नहीं गया। मैं ईसाई और मुसलमान लड़कों के साथ कंचे खेलता था। 'जाट-बंदर' खेलता। मॉरिस के साथ शहर में लगी टारजन की सभी फिल्में देखता। लांसर बैरक्स की बरगद की शाखों पर जॉनी वैसमिलर की तरह उछलता। कभी बुजुर्गों के साथ बैडमिंटन खेलता। कैरम भी खेलता।

पर इन्हीं दिनों मेरा उत्साह कभी-कभी ठंडा भी पड़ जाता। पहला कारण था, घर में भैंस का खरीदा जाना, दूसरा उन बैरक्स के तमिल भाषी लड़के।

पिताजी ने भैंस खरीदने के बारे में शायद ही कभी सोचा हो। छोटू नाम के किसी भैंसवाले को उन्होंने पचास-साठ रुपये बतौर उधार दे रखे थे। उसने मुश्किल से दस या पंदरह रुपये वापस किये होंगे। एक दिन वह शहर छोड़कर भाग गया। उसकी बीवी रुपयों के बदले एक बूढ़ी भैंस पिछवाड़े में बांध गयी। उसके जाने के कुछ देर बाद ही वह भैंस हमारे उखड़े गेट समेत भाग निकली। मैं और पिताजी उसकी पहचान के सहारे पूरा शहर छानते रहे। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पहली बार जीवन में हम चर्च की चारदीवारी के पास भी गये। भैंस वहां बंधी थी। भैंस उन्होंने वापस कर दी और पादरी ने हमें नसीहत दी कि इतनी जिद्दी भैंस को गेट पर नहीं बांधना

चाहिए था। बड़ी मुश्किल से हम भैंस को खींचते-खींचते घर तक लाये और गुसलखाने में उसे बंद कर दिया। मां चीखी, 'अरे रे, वहां बाल्टी, गरम पानी का पतीला सभी तो धरा है।'

'बर्तन या बाल्टी, भैंस खा नहीं जायेगी।' पिताजी शांत स्वर में बोले थे।

अलसुबह तीन बजे भैंस ने रंभाना शुरू कर दिया। पिछले दिन न तो उसे चारा दिया गया था, न ही दूध दुहा गया। पिताजी भी शायद चिंतित हो गये थे। हमारे दूधवाले ने कह दिया था कि वह दुहना नहीं जानता। पिताजी को गुसलखाने के पास जाते डर लगा और यह तो मां ही थीं, जिन्होंने हिम्मत करके दरवाजा खोल दिया। फिर दूध भी मां ने ही दुहा।

भैंस के आते ही हमारे परिवार का जीवन-क्रम ही बदल गया। भैंस ढेर सा गोबर देती थी। हम स्वयं उसको उठाते। मां ने दूध दुहना सीख लिया था। मैं चूंकि बड़ा था इसलिए मुझे भी सीखना पड़ा। हम उसे पहले भैंस ही कहते थे। पर जो भैंस घर के लिए इतनी उपयोगी सिद्ध होती जा रही थी उसे भैंस कहना अनुचित लगने लगा। लिहाजा हमने उसका नामकरण किया। हम उसे 'लक्ष्मी' कहने लगे। भैंस को 'लक्ष्मी' कह कर पुकारने की बेवकूफी पर हमारी बेहद हंसी हुई। इसी बीच हमारी भैंस घर भर में सबसे हिलमिल गयी। पांच-सात सीढ़ियां चढ़कर रसोईघर के दरवाजे पर खड़ी हो जाती। मां दोसा बनाने के लिए चावल और उड़द की दाल भिगोकर रखती थीं और वह उसका सफाया कर जाती। ये सारी शरारतें तो फिर भी ठीक थीं, अक्सर वह खूंटा उखाड़कर चर्च की चारदीवारी में घुस जाती। पादरी तथा अन्य लोग इसे धार्मिक भावनाओं के साथ तौलने लगे। 'लक्ष्मी' नाम तो रह गया और सब की जुबान पर 'टेढ़े सींग वाली भैंस' का नाम ही बना रहा। एक लड़का दिन भर में एकाध घंटा उसे चरा लाता। उस इलाके में घास-फूस कम ही उगा करती। सो बाहर से चारे का प्रबंध करना पड़ता। चूंकि वहां चावल पैदा नहीं होता था, सो 'पुआल' का सवाल नहीं उठता था। 'कुट्टी' नाम की घास बाहर से गाड़ी पर आती। वही लेकर रखी जाती। मक्के के दाने बिकते। घास और मक्के से हमारी भैंस का काम चल जाता। चूंकि हमारा बैरक्स शहर से काफी दूर पड़ता था, सो गाड़ियां अक्सर वहां नहीं आती थीं। पर जब भी आतीं, कुट्टी काफी मात्रा में लेकर रख लिया जाता था। इस पर भी अकाल पड़ता और हमारी भैंस दुबला जाती। मां और पिताजी के गले भी कौर नहीं उतरता। रात की नींद भी गायब हो जाती। अगले दिन मुझे दो मील दूर मोंडा नामक जगह तक जाकर पच्चीस गांठ घास लानी पड़ती। हमारी भैंस यह पच्चीस गांठ तो आधे घंटे में ही खा जाती। पर मेरी छोटी साइकिल में इससे अधिक घास लायी भी नहीं जा सकती थी। मेरे भरोसे कोई भी गाड़ीवान

शहर से दूर आने को तैयार नहीं होता। मेरे जीवन में खेलने के मेरे अधिकार को इस भैंस ने कितना प्रभावित किया, यह तो मैं नहीं जानता, पर हां, खेलने के मेरे जनून को खत्म करने की कोशिश यह भैंस अनजाने अवश्य करती रही थी।

भैंस ने अपने तईं मेरे उत्साह को ठंडा किया सो किया, दूसरी ओर हमारे बैरक्स के एक दूसरे तमिल परिवार के कृष्णस्वामी तथा उसके भाइयों ने भी मिलकर मुझे हत्या और आत्महत्या के बारे में सोचने को विवश कर दिया।

लांसर बैरक्स की पहली पंक्ति में हमारा मकान आखिरी था और इसी तरह दूसरी पंक्ति में कृष्णस्वामी का मकान आखिर में पड़ता था। उसके पिता सफेद यूनीफार्म पहनकर सप्ताह में दो दिन शहर जाते। मुझे याद नहीं, वे या तो गार्ड थे या टिकट चेकर। पर मेरे लिए वह बड़ी नौकरी पर थे। कृष्णस्वामी भी मुझसे बड़ा था। मुझसे एक क्लास आगे भी पढ़ता था। उसका भाई बालू भी मेरी ही कक्षा में था, पर वर्ग दूसरा था।'गोकू' एक कक्षा पीछे था। वे अजीब ढंग से, जोर देकर और खींच-खींच कर तमिल बोलते थे। मां कहा करती थी कि वे लोग पालघाट की ओर के हैं। स्कूल में मेरी मुलाकात बालू से ही होती। तेलुगु और मुसलमान लड़कों के बीच वह बकरा लगता। पर जहां भाई साथ होते, वह शैतान बन जाता।

पता नहीं कब हम दुश्मन बन गये। वह गोकू और कृष्णस्वामी के साथ ही आता। शाम को वे तीनों साथ ही लौटते। एक दिन शाम को तीनों ने रास्ते में चलते हुए मुझे धक्का देकर एक खड्ड में गिरा दिया। हमारे शहर में पानी कम बरसता था। फिर लोगों का आना-जाना भी कम ही रहता। सो मैंने उठकर निकर झाड़ी और उनसे पचास गज पीछे चलने लगा। पर शेर के मुंह में तो खून लग चुका था। दोबारा मुझे गिराया गया। इस बार मैं तैयार था। कृष्णस्वामी और बालू के चेहरे पर नाखूनों से खरोंच दिया। उस दिन युद्ध-विराम हो गया।

इन दिनों घर के लोग मुझ पर ध्यान देने लगे थे। दस बजे स्कूल लगता, पर मैं नौ बजे घर से निकलता। इसी तरह स्कूल छूटने के दसवें मिनट मैं घर पर होता। यह सारा परिश्रम कृष्णस्वामी और उसके भाइयों से बचने के उद्देश्य से किया जा रहा था। स्कूल जाते समय उनसे बचना आसान था। पर लौटते वक्त, छुट्टी तो एक ही साथ होती थी। कोई कितना ही धक्का-मुक्की कर ले, एक ही दिशा में जाने वालों के बीच यह संभव नहीं होता कि कोई बहुत आगे निकल जाये। कुछ दिनों तक मैं दीवार फांदकर जाता रहा। कुछ मिनटों का अंतर जरूर पड़ता था।

मेरी देखा-देखी कई लड़के दीवार फांदने लगे। मैं स्कूल जाते वक्त भी दीवार फांदता। कई बार वे छुट्टी पर होते। फिर भी दीवार फांद कर ही लौटता। रास्ते में तेजी से चलता। हर वक्त सतर्क रहता। मां से बात छिपी नहीं

रही। पिताजी से उसने शिकायत कर दी। पिताजी ने मुझे पीटा भी और कारण भी जानना चाहा। पर मैं सोचता था कि यह समस्या मेरी अपनी है और समाधान भी मुझे ही ढूंढ़ना होगा। पर कैसे, यह मैं खुद नहीं जानता था।

मैंने कल्पना में कई बार उनका खून किया, एक बक्से में बंद किया, और जहाज में फेंक दिया था। कितनी कितनी योजनाएं बनाया करता। बालू और गोकू के शरीर को किस तरह छिपाया जाये, कैसे उनको फेंका जाये, मैं इन्हीं योजनाओं में लगा रहता। कई बार सोचा करता, 'काउंट ऑफ मांटी क्रिस्टो' के उपन्यास की तरह, मैं भी बीस-तीस साल बाद बदला लूं तो ठीक रहे। पर उसके लिए मुझे टापू में बंदी बनना होगा। सुरंग खोदकर एक दूसरे कैदी से मिलना होगा। फिर खजाने को पाना होगा। वेश बदलकर करतब दिखाने होंगे। कृष्णस्वामी और उसके भाइयों वाले वर्तमान से कटकर बीस-तीस साल बाद के भविष्यलोक में विचरा करता। कई बार योजनाएं फालतू लगतीं। तब लगता आत्महत्या कर लूं। पर किया कैसे जाये ? सभी जान जायेंगे। मैं किसी को आत्महत्या वाली बात की भनक नहीं लगने देना चाहता था। लेकिन आत्महत्या के बाद मेरे शरीर को देखकर लोग जान लेते। पर शरीर छिपा दिया जाये तो ? अब शरीर भला कैसे छिपता ? जमीन के अंदर शरीर को गाड़ लेने की बात दिमाग में आयी। मैंने फावड़ा उठाया और कब्रिस्तान में जाकर कब्र खोदने लगा। दस दिन बीत गये, पर एक फुट की कब्र भी नहीं खुदी। फिर वहा डर भी लगता था। वहां के भूत-प्रेत तो अंग्रेजी बोलने वाले थे, मैं भला कैसे उनके बीच रह पाता ? आगे चलकर पहाड़ी के आसपास जगह ढूंढ़ी। पर मुझे कोई जगह ढंग की नहीं मिली। पर इस बीच प्रदेश के भूगोल के बारे में मेरे ज्ञान का विकास हो गया था। लाल मिट्टी वाली जगह होने के कारण बिच्छू काफी संख्या में थे। किस पत्थर के नीचे बिच्छू छिपा होगा, मैं बखूबी अंदाज लगा लेता था। पत्थर हटाने पर वे बिच्छू जिस तरह कुलबुलाते थे, मुझे उन पर तरस आ जाता।

संदानम् के आने के बाद भी कृष्णस्वामी भाइयों की दुश्मनी बरकरार रही। संदानम् के साथ मैं आता। कृष्णस्वामी ने फिर मुझे धकेल दिया। मैं तो खैर नहीं भागा, संदानम् सिर पर पैर रखकर भाग लिया। संदानम् से मैंने इस विषय पर कभी बात नहीं की। हमारा क्रिकेट का खेल इसके बाद ही प्रारंभ हुआ था और खत्म भी हो गया।

गैर भाषा-भाषी प्रदेश में अकेले रहने की आदत मुझे पड़ गयी थी। लांसर बैरक्स के ईसाई और मुसलमान लड़कों ने मुझे अपनी टोली में शामिल कर लिया। वे मुझे बोम्मन कहते, पर मैं नाराज नहीं होता था। वे गिरगिट को मारते। गिलहरी

को तंग करते । गंदी गाली बकते, चाहे वह कितनी भी अप्रासंगिक क्यों न हो । पत्थर से टकरा गये तो गाली । कांटा चुभे तो वही गाली । लट्टू नचाने में चूक गये, या पेड़ पर चढ़ गये तब भी वही गाली । प्लाजा में टिकट नहीं मिले तो गाली । मॉरिस की दो बड़ी और एक छोटी बहन थी । उनके बीच जब कभी झगड़ा होता तो लड़कियां भी खुलकर उन्हीं गालियों का उपयोग करतीं । मॉरिस की बड़ी बहन इनका प्रयोग कुछ कम ही करती । घर भर में उसी का रंग खुला हुआ था । युद्ध के दिनों में, जब पूरा सिकंदराबाद सिपाहियों से भर गया था, तो वह कुछ बदल सी गयी थी । अंग्रेजी फिल्मों की नायिकाओं की तरह वह सजने लगी थी । हमसे जब बातें करती उसकी अंग्रेजी साफ समझ में आती, पर जहां वे सिपाही आते, उसकी अंग्रेजी विदेशी हो जाती । एक दिन वह घर पर किसी सिपाही से बातें कर रही थी । उसने मुझे पास बुलाकर बिठा लिया । उससे बातें करती हुई, हर पांच मिनट में मेरा मुंह चूम लेती । मुझे कोई एतराज नहीं था । पर वह सिपाही पूरा राक्षस लगता था । आंख, चेहरा, सभी कुछ एकदम लाल । सारे शरीर पर बाल उगे हुए थे । उसके मुंह से हर वक्त बदबू आती रहती । शायद यही वजह थी कि वह मुझे चूमती । मॉरिस ने मेरी ओर देखकर आंख मार दी थी ।

कृष्णस्वामी के घर और दो सदस्य आ गये । सिकंदराबाद में काम की तलाश में आये हुए उसके दोनों मामा । उनकी तमिल और भी बदतर थी । आते ही दोनों आर्डनेंस फैक्टरी में नौकरी मिल गयी । उन दिनों सोलह वर्ष की उम्र वाले किसी लड़के को, यदि चार अक्षर भी अंग्रेजी के आते हों, तो नौकरी मिल जाया करती थी । सुबह आठ बजे वे निकलते और साढ़े तीन बजे तक लौट आते । अब कृष्णस्वामी के परिवार में पुरुष संख्या (पिताजी को छोड़कर) पांच हो चुकी थी । उन्होंने क्रिकेट खेलना शुरू किया । चूंकि उनके साथ बड़े लड़के थे, उनको हमारी सी दुर्गति नहीं झेलनी पड़ी । मैं लांसर बैरक्स के ईसाई परिवारों का मित्र बन गया । मुसलमानों के घरों में परदे के पार भी मैं आ-जा सकता था । मुर्गे को हलाल होता देखने का आदी हो गया था । मॉरिस के मां-बाप पीकर हंगामा करते, मैं उसका भी आदी हो गया । उन लोगों के साथ हंगामे के बीच 'मोनोपोली' खेलता । खुर्शीद, जोहरा बाई और नूरजहां के गीत गुनगुनाता । मां पिताजी को समझा बुझाकर पाजामा सिलवाया । जनार्दन नायडु और उसके भाइयों के साथ कैरम खेलना सीख गया । हमारे घर में पता नहीं किस जमाने का बैडमिंटन नेट पड़ा हुआ था । चूंकि मैं नेट का स्वामी था, मुझे भी मौका दिया जाता । उनकी बातों में और मॉरिस और उसकी टोली की बातों में बहुत कम अंतर था । मॉरिस के साथ संकोच कम होता । पर ये नायडु लिजलिजी किस्म की बातें अधिक किया करते । उनमें से वेंकट बहुत शरारती

था। कानवेंट की लड़कियां अक्सर हमारे बैरक्स से होकर जातीं। वह जानबूझ कर टेनिस की गेंद उन पर मारता और मुझसे उठा लाने को कहता। एक बार हमारी भैंस ने गोबर से सनी पूंछ से उसे लिथाड़ दिया। मैं बाल्टी भर पानी लेकर धुलवाने गया था। उसकी पैंट मैंने जानबूझ कर अधिक भिगोयी।

कृष्णस्वामी और उसके बंधुओं ने मिलकर क्रिकेट प्रतियोगिता बड़े जोर-शोर से रखी। बाहर के कुछ तमिलभाषी लड़के भी आये। टेनिस खेलने का दिखावा मैं करता जरूर था, पर गेंद लेने और अप्पाराव तथा वेंकट की गुप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए कानवेंट की लड़कियों का पीछा करना उबा गया। टेनिस के अलावा कंचे, गुल्लीडंडा, जाट बंदर आदि भी खेला करता था। पर क्रिकेट की तुलना में ये सभी जंगली खेल थे। मैं यह समझता अवश्य था और कृष्णस्वामी बंधु इसी वजह से अपने को मुझसे श्रेष्ठ समझते थे। एक बार कृष्णस्वामी मॉरिस, सैयद और वहाब के बीच फंस गया। वे तीनों उसे पीट रहे थे और मैं विवश देख रहा था। उसके बाद स्कूल से लौटते मुझे और सतर्क रहना पड़ा। ये सारी घटनाएं सालों में घटी लगती होंगी आपको ! पर नहीं। इन घटनाओं का कालक्रम मुश्किल से एक साल ही होगा। यानी भैंस, मॉरिस, कृष्णस्वामी बंधुओं के साथ युद्ध, जाट बंदर, टार्जन की फिल्में, वेंकट और अप्पाराव की रहस्य भरी हंसी, कब्रिस्तान में कब्र की तलाश, मॉरिस की बड़ी बहन के साथ आत्मीयता. . . . ये सारी घटनाएं महज एक वर्ष के बीच घटी थीं। जब मैं छठी कक्षा का छात्र था, युद्ध समाप्त हो गया था। तभी मॉरिस की दूसरी बहन का रंगढंग भी बदलने लगा। वह सांवली थी, पर शरीर गदराया हुआ था। उसका नाम लारा था। बड़ी वाली का नाम याद नहीं पड़ता। काफी कोशिश के बावजूद भी याद नहीं आता। मानव मन कितना अविश्वसनीय होता है ! कितने ही वर्षों को यूं मिटाकर रख देता है कि उनकी खरोंच तक नहीं रह पाती। केवल कुछ क्षणों को अनंत काल के चेतना के पर्त पर बिछा देता है और वे ही याद रह जाते हैं।

युद्ध के दौरान मॉरिस की बड़ी बहन का जो उत्साह कायम था, वह जाने कहां लुप्त हो गया। वह थकी-थकी सी लगती। सिपाही ने आना बंद कर दिया था। इन लोगों ने सोचा था कि सिपाही ब्याहकर उसे इंगलैंड ले जायेगा। पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ। उसे भी और ईसाईयों की तरह सिकंदराबाद में ही सड़ना होगा। वह घर पर रहती और लारा फिल्में देखने में हमारा साथ देती। कभी-कभी हम सभी उसकी छोटी बहन को लेकर प्लाजा फिल्म देखने जाते। मैटिनी देखने जाते तो चवन्नी का टिकट ही लगता। पर ब्रिटिश चवन्नी ही चलती। हैदराबादी सिक्का होता तो पांच आने देने पड़ते। प्लाजा में टिकट नहीं मिलता तो रिवोली जाते। रिवोली में भी

नहीं मिलता तो ड्रीमलैंड जाते। डेरिस बिल्कुल गुंडों-सा व्यवहार करता। हमारे सामने पड़ी कुर्सी को जूते से मारता। भीतर जाते ही सिगरेट जला लेता। मॉरिस भी शरारती था। पर डेरिस की शरारत में कलात्मकता मिली रहती। लारा उसे बेहद पसंद करती। अन्य ईसाई मित्रों के होते हुए वह मेरे प्रति उदासीन जरूर रहते पर जब अकेले होते, मुझे अपने ही परिवार का सदस्य मानते। लारा और उसकी बड़ी बहन दोनों ही अपने-अपने ढंग से मुझे प्यार करती थीं। बड़ी बहन अपने बक्से से सिपाही की दी हुई अंग्रेजी की पत्रिकाएं पलटती और मुझे समझाती। इसी तरह पत्रिकाएं दिखाती एक दिन मुझे गले से चिपकाकर रो पड़ी। मेरा मन भी भर आया और मैं भी रो दिया। हम दोनों को रोता देखकर, उसके पिता मन्नास ने हमें सोफे से नीचे धकेल दिया। इतने में उसकी मां आ गयी। दोनों में झगड़ा हुआ। फलस्वरूप तीन-चार तस्वीरें तोड़ दी गयीं।

पर एक समय ऐसा भी आया, जब ये सारी बातें खुद-ब-खुद मेरी जिंदगी से छूटती चली गयीं। मॉरिस, उसकी बहन, गदरायी हुई लारा, मन्नास, मिसेज मन्नास, सभी जाने कहां गुम हो गये। मेरे मुसलमान दोस्त, नायडु बंधु, सभी जिंदगी से एकाएक गायब हो गये। और मेरे अजीज बन गये कृष्णस्वामी बंधु।

इस बदलाव का श्रेय रंगरामानुजन को जाता है। अरषदनाड बैंक का जब दीवाला निकल गया तो पिताजी को बहुत घाटा उठाना पड़ा था। लोग या तो पिताजी को लताड़ते—उसमें रुपये डालने की बेवकूफी क्यों की ! या फिर उन पर तरस खाते। देखा जाये तो पिताजी को कुल आठ सौ रुपये का नुकसान उठाना पड़ा था। उस समय उतने रुपयों में पचास तोला सोना खरीदा जा सकता था। उन्हीं दिनों पिताजी ने दो कोट सिलवाये। शुरू में क्रिकेट खेलते समय कभी-कभी मैं उसे पहन लिया करता। आगे चलकर पिताजी उन्हें सालों पहनते रहे। कोट दुरंगा था। कभी गहरा हरा दीखता तो कभी भूरा। कहीं-कहीं धागे भी निकल आये थे। वहां कोट का रंग बिल्कुल लाल लगता। दस साल तक कोट बक्से के निचले कोने में पड़ा रहा। उसे पहनते कोई संकोच उन्हें नहीं हुआ, सिवाय इसके कि कहीं-कहीं दीमकों ने अपना प्यार दिखाया था। इसके अलावा दस, बीस साल गुजरने के बाद भी हैदराबाद और सिकंदराबाद के दर्जी उसी पुराने ढंग के कोट सीते थे। किसी को भी वेशभूषा में नयापन लाने की जरूरत महसूस नहीं हुई। स्कूल के लड़के 'ओपन कालर' पहनते थे। कई बुजुर्ग भी इसी किस्म की कमीज पहनते थे। कुछ उम्दा कपड़ा हो तो 'टाइ कालर'। वैसे पैंट-कमीज से जाति तक का अंदाजा हो सकता था। हिंदू, मुसलमान लड़के पाजामा या पैंट पर कमीज पहनते। पर ईसाई कमीज पैंट के अंदर कर लेते। कई तमिलभाषी बुजुर्ग यूनिफार्म की तरह एक ही ढंग के कपड़े पहनते थे।

पूरी आस्तीन की कमीज, धोती, उस पर कोट, सिर पर साफा। अय्यर हो या राघवाचारी, गोविंदस्वामी नायडु हो या पिनाकपाणि मुदलियार, तमिलनाडु से आने वाले हर बुजुर्ग की वेशभूषा यही होती।

मेरी पैंट हमेशा दो इंच लंबाई में और दो इंच चौड़ाई में अधिक होती थी। मां हमेशा मेरे बढ़ते हुए कद का हवाला देकर इसी तरह मेरे कपड़े सिलवाया करतीं। कमर की चौड़ाई कम करने के लिए अक्सर 'बकल' लगाने पड़ते। उस पर भी मेरी पैंट खिसकती जाती। मैं पैंट को अकसर कमर पर मोड़कर खोंस लेता और कमीज बाहर कर लेता।

सिकंदराबाद के लड़कों की वेशभूषा म अगर परिवर्तन लाने का श्रेय किसी को जाता है, तो केवल दो ही व्यक्तियों को। एक तो राजकुमार, और दूसरा रंगरामानुजन। दोनों के पिता, भाई, मामा फौज में थे। दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर ये लोग सिकंदराबाद आ कर बस गये थे। राजकुमार नये ढंग की कमीज पहनकर आता। वह न तो कमीज लगती और न कोट। बड़ी-बड़ी जेबें बनी रहतीं। कमर पर बेल्ट-सा बंधा रहता। उसने कहा था कि उसे बुश कोट बोलते हैं। रंगरामानुजन की कमीज सामने की तरफ पूरी खुली रहती और उसके बटन लगे रहते। हम कमीज सिर पर से पहनते थे, और वह कोट की तरह बांहें घुसाकर पहनता था। हम कमीज पहनते तो सिर के बाल बिगड़ जाते, पर उसका ऐसा कुछ भी नहीं होता। वह जिस विद्यालय से आया था, वहां के स्तर में और हमारे विद्यालय के स्तर में काफी अंतर रहा होगा। शुरू में वह बड़ी कक्षा में बैठता था, बाद में मेरी कक्षा में भी बैठने लगा। तमिल की कक्षा चलती और वह सबका मुंह ताकता रहता। उसने तमिल की परीक्षा कभी नहीं दी।

एक दिन हमारे अंग्रेजी के अध्यापक ने हमारे व्याकरण ज्ञान की परीक्षा ली। एक लंबे वाक्य को बोर्ड पर लिखा और उसके एक टुकड़े को दिखाकर, 'क्लाज' पूछा। एक-एक करके लड़के उठते गये। कई तो चुपचाप खड़े होते रहे। एक लड़के ने साहस करके 'नाउन क्लॉज' का नाम लिया।

'नो नेक्स्ट।'

'अडजक्टैवल क्लॉज', दूसरे ने कहा।

'नो नेक्स्ट।'

'अडवर्बियल क्लॉज', तीसरे ने अंदाजा लगाया।

सबार्डिनेट क्लॉज के ये तीनों ही प्रकार हमें सिखाये गये थे। सभी को इन तीनों में अंदाजा लगाना आता था। दांव ही था यह। अगर तीनों नहीं थे, तब ?

मैं उठ खड़ा हुआ। पूरी कक्षा मुझे कौरवों की सभा और अध्यापक शकुनि लग रहे थे। मैंने पासा फेंका।

'पैरंथिटिकल क्लॉज।'

एक मिनट पूरी कक्षा में मौन छा गया।

'नेक्स्ट', अध्यापक ने कहा।

मेरे पास वाली बेंच का पहला लड़का रंगरामानुजन ही था। उसने उठकर कहा, 'पैरंथिटिकल क्लॉज।'

कक्षा समाप्त हुई और हम दोनों मेधावी छात्रों की तरह आपस में एक दूसरे को देखकर मुस्करा दिये। उसने मेरा नाम पूछा और मैंने उसकी कमीज छूकर देखी।

दो दिनों में ही उसे कृष्णस्वामी की कक्षा में डाल दिया गया। दोनों ने दसवीं की परीक्षा पास की और शहर से चार मील दूर कॉलेज में फिर मिले। कृष्णस्वामी बंधुओं के साथ क्रिकेट खेलने वह हमारे बैरक्स में आता था। मेरे लिए उन लोगों के साथ क्रिकेट खेलने की कल्पना भी असंभव थी।

सिकंदराबाद में भी अब बुशकोट और खुली कमीज का रिवाज चल निकला था। पजामे के साथ बुशकोट और खुली कमीज कम जंचते। कुर्सी पर बैठने पर कमीज थोड़ी और फैलती और पजामे का नाड़ा दिखता। धीरे-धीरे पजामा भी पैंट की तरह बगैर नाड़े का सिला जाने लगा। उन दिनों एम. एस. 55 कपड़े का पजामा और खुली कमीज सिलवाकर मैं अपने को जनाब जिन्ना समझने लगता। लोगों का कहना था कि वे अच्छे कपड़े पहनने के लिए दुनिया में मशहूर हैं।

एक दिन मैं बैरक्स के भीतर आ रहा था, तो रंगरामानुजन दिखा।

'तुम्हारा घर कहां है ?' उसने पूछा।

'पहली पंक्ति का आखिरी मकान।'

वह मेरे साथ ही आया। मैं मन्नास के मकान को पार कर रहा था कि मॉरिस की बड़ी बहन ने बुलाया। मैंने रंगरामानुजन को वहीं छोड़ा दिया और मन्नास के घर गया। मॉरिस की बहन ने जब मेरे कंधे पर हाथ रखकर बातें की थीं, उसने जरूर देखा होगा। उसे 'पिक्चर कोयर' चाहिए था। वह इंगलैंड से निकलने वाली फिल्म पत्रिका थी। सिकंदराबाद स्टेशन के व्हीलर के पास तब तक उसके अंक आया करते थे। उसने मुझे चवन्नी दी।

मैं उसे लेकर निकल ही रहा था कि लारा आ गयी। वह पहले से भी स्वस्थ लग रही थी। उसे भी रंगरामानुजन ने देखा ही होगा। 'व्हाट मैन। व्हेयर यू गोइंग मैन ?' उस घर के सभी सदस्य 'मैन' कहकर ही वाक्य खत्म करते थे। मैं उलझन में था कि घर को अंग्रेजी में क्या कहा जाये. 'हाउस' या 'होम' और इसी उलझन में

चुप लगा गया। लारा ने मेरी चुप्पी तोड़ी। उसे मजाक सूझा।'तुम्हारे मुंह में क्या भरा है, मैन ?' कहते हुए उसने मेरे गाल पकड़कर मुंह खोलकर देखा। यह भी रंगरामानुजन ने देखा ही होगा।

मन्नास के घर से मेरे घर तक पहुंचने के बीच एक और घटना घटी। प्यारी बेगम बाहर खड़ी थी। टिकट चेकर कासिम की दूसरी बेटी थी वह। उसे हमारे घर वाले सूअर कहते थे। मैं नहीं जानता जंगली सूअर कैसा होता है। पर प्यारी बेगम सुंदर नाक-नक्श वाली मोटी लड़की थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि हमारे घर नागरत्नम् आयी थी। यह मेरी दूसरी बहन की सहेली थी। सिकंदराबाद के तमिलभाषियों में वह काफी लोकप्रिय थी। व्हाई. एम. सी. ए. की वाद-विवाद प्रतियोगिता में धड़ल्ले से भाग लेती। स्कूल कॉलेज के नाटकों में नृत्य करती। सभी की ओर शरारत भरी नजरों से देखती। रंगरामानुजन बस, मेरा मुरीद हो गया। क्रिकेट खेलने वह कृष्णस्वामी के घर बाद में जाता, पहले मुझसे मिलता।

शुरू-शुरू में वह मेरे और कृष्णस्वामी के संबंधों को लेकर चुप ही रहा। मेरे घर आता। पाच दस मिनट बैठता। फिर ऊबकर क्रिकेट खेलने चला जाता। मैं मॉरिस, वहाब की खोज में निकल जाता। मैं जिस तरह के खेल खेलता था, उनमें कौशल की आवश्यकता नहीं थी। यही वजह थी कि मैं कुछ दिनों में इस तरह के खेलों से ऊब गया। एक दिन रंगरामानुजन मुझे अपने साथ ले गया। कृष्णस्वामी बंधुओं में दोनों मामाओं के बाद रंगरामानुजन और कृष्णस्वामी ही बड़े थे। दोनों मामा, शायद बालकों के साथ खेलते-खेलते ऊब गये होंगे। कई दिन वे गायब रहते। रंगरामानुजन और कृष्णस्वामी के नेतृत्व में दस लड़के बल्ला, स्टंप, गेंद और पैड समेत क्रिकेट खेलने मील भर दूर मैदान में जाते थे। रोज प्रैक्टिस चलती। एक दल का कप्तान कृष्णस्वामी था, दूसरे का रंगरामानुजन। मैं पेड़ के नीचे बैठा रहता। रंगरामानुजन बीच-बीच में मेरे पास आता और बातें करता। उसकी दोस्ती के कारण कृष्णस्वामी बंधुओं ने अपना विरोध भीतर दबा लिया था।

कुछ ही दिनों में रंगरामानुजन को लग गया कि नागरत्नम् के मेरे घर आने से या प्यारी बेगम की दोस्ती से या फिर मेरी ईसाई मेमों के साथ आत्मीयता होने से उसका कोई लाभ होने वाला नहीं। मेरे बैरक्स के मुसलमान लड़के बातें,'क्यों बे साले ?' से शुरू करते। रंगरामानुजन की कोई बहन नहीं थी, फिर भी'साला' शब्द वह पचा नहीं पाया। मॉरिस और डेरिंस के साथ एक दिन परिचय करवाया। और तीनों फिर 'रिवोली' में फिल्म देखने भी गये। रामानुजन के कहने पर ही उस फिल्म को देखने गये। यह उसकी गलती थी। फिल्म थी लारेंस ओलिवियर की'हेनरी फिफ्थ'। हममें से किसी की भी मानसिकता इतनी परिपक्व नहीं हुई थी कि हम लारेंस ओलिवियर

के अभिनय की प्रशंसा कर सकें। मुझे सिर-पैर न समझ में आये फिर भी, इतना तो कर सकता था कि चुपचाप देख लूं। पर डेरिंस शरारतें करता रहा। सिगरेट फूंकता, धुंआ कभी मेरे, कभी रंगरामानुजन के चेहरे पर उड़ाता। बात-बात पर अंग्रेजी में एक भद्दी गाली बक देता। लारा ककड़ी खा रही थी और इधर-उधर गंदगी फैला रही थी। कृष्णस्वामी ने मेरी ईसाई दोस्तों के साथ दोस्ती पर कोई आक्षेप नहीं किया। पर हां, रंगरामानुजन के साथ वह शायद कुछ कठोर हो गया था। एक दिन छोड़कर रंगरामानुजन मेरे साथ जाट बंदर खेलने आया। पूरे खेल में उसी को पेड़ के नीचे खिंचे गोले में रखी तीलियों की रखवाली करनी पड़ी। वह हममें से किसी को छूने पेड़ पर चढ़ा नहीं कि दूसरा नीचे कूदकर तीली छू लेता। उस तीली को खोजने रंगरामानुजन भागता। क्रिकेट के खेल में वह बेताज बादशाह था। पर यहां डेरिंस, मॉरिस और वहाब के जंगली खेल में उसे खेलते और तकलीफ उठाते देख मुझे तरस आया था। एकाध बार मैंने खुद होकर अपने को पकड़ावाना चाहा। पर इसके पहले कि वह मुझे पकड़ पाता, कोई दूसरा शाख पकड़कर उतर जाता और तीली छू लेता।

कॉलेज में, खेल के समय, हमेशा हंसते-खेलते रहने वाले रंगरामानुजन को उस दिन पहली बार रोते देखा। हालांकि वह फूट-फूट कर नहीं रोया, पर भीतर ही भीतर वह कितना टूट गया था, साफ चेहरे से झलकता था। जितनी उसके चेहरे पर थकान उतरती उतनी ही डेरिंस और मॉरिस की बर्बरता बढ़ती जाती। जान बूझकर तीली को वे चारदीवारी के पार सड़क पर फेंकते। दीवार फांदते वक्त एक बार रंगरामानुजन का पैर फिसल गया और घुटने पर बेहद चोट आयी। तब भी लड़के उससे चाल मांगते रहे थे।

मुझे यकीन था कि रंगरामानुजन अब मुझसे दोस्ती छोड़ देगा। पर वह मेरे घर आया। हो सकता है, प्यारी बेगम, और नागरत्नम् का आकर्षण इतना ही तीखा हो। रंगरामानुजन की ही तरह इस खेल में मैंने भी बहुत सहा था। काफी दौड़ाया गया था। पर उसका एक अंश भी जब रंगरामानुजन ने भुगता, तो जाने क्यों मुझे दया आ गयी। मैं उसके साथ कृष्णस्वामी बंधुओं के खेल के मैदान में गया। शुरू में एकाध दिन तो मैं खाली पेड़ के नीचे बैठा रहा और आस-पास के दृश्यों को देखता, रंगरामानुजन से बातें करता लौट आया। फिर एक दिन अपनी ओर आती गेंद को रोककर उनकी ओर फेंका। फिर शीघ्र ही मैं उनके दल का सदस्य हो गया।

मैं और कृष्णस्वामी बंधु बरसों विरोधी रहे, पर रंगरामानुजन की वजह से जब मुझे दल में शामिल किया गया तो मुझे एक नयी प्रतिष्ठा दी गयी। आमतौर पर, मेरे साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए था, जो बालू के साथ होता। पर अब

मुझे रंगरामानुजन के बराबर का दर्जा दिया गया तो बालू भी मुझसे कटा रहता। संदानम् के साथ खेलते हुए मैं अपने को होशियार समझता रहा था। पर यहां तो सभी ईमानदारी के साथ क्रिकेट खेलने वाले थे। कृष्णस्वामी गेंदबाजी और बल्लेबाजी दोनों ही अच्छी करता था। रंगरामानुजन के पास शैली तो थी पर बल्लेबाजी मामूली करता था। कृष्णस्वामी के दोनों भाई बालू और गोकू अच्छी गेंदबाजी करते थे। उनमें से गोकू छः गेंदों में से तीन को इस तरह फेंकता कि गेंद बीच वाली स्टंप के ठीक सामने आती। मैंने जब उनके साथ खेलना शुरू किया था, तो गोकू ही गेंदबाजी करता था। मैं अच्छी तरह जानता था कि उसकी एक गेंद से ही मेरा विकेट गिर जायेगा। मेरी बल्लेबाजी साधारण से भी निचले स्तर की थी। लिहाजा मैं क्रोध, निराशा, झुंझलाहट सारे संवेगों की तीव्रता के साथ बल्लेबाजी करता। पर अगले ही क्षण विकेट की ओर देखता। मुझे निराशा कभी नहीं होती। विकेट धराशायी रहता। पर मेरे आउट होने पर कोई नहीं चिल्लाता। अक्सर लोग इसे मेरा दुर्भाग्य कहते और अगली बार सफलता की कामना करते। कृष्णस्वामी और रंगरामानुजन टक्कर के थे। कई बातों में रंगरामानुजन कुछ आगे था। मैं उसका अंतरंग मित्र था। इसलिए मेरी घटिया क्रिकेट पर आलोचनाएं अधिक नहीं हुईं। रंगरामानुजन से दोस्ती के बीच मेरी घटिया क्रिकेट कभी आड़े नहीं आयी। पर एक नुकसान यह भी हुआ कि मुझे क्रिकेट के आधारभूत तत्व कभी नहीं सिखाये गये, चूँकि मैं रंगरामानुजन का समकक्ष समझा जाता था। मैं बल्ला उठाकर जाता, गोकू गेंद फेंकता और मैं आउट होकर अगले खिलाड़ी को बल्ला थमाकर लौटता।

मॉरिस की बड़ी बहन दिन पर दिन दुबली होती चली गयी। डेरिस एक बार घर से भाग गया था। बंबई के बंदरगाह में आग लगने से जानमाल का काफी नुकसान हुआ। लांसर बैरक्स के पड़ोसी पारसी परिवार के किसी रिश्तेदार के यहां, उसी आगजनी की घटना में छत फोड़कर सोने की बड़ी ईंट आ गिरी थी। भारती स्मृति चिह्न निर्माण के लिए पिताजी तथा उनके दोस्त ने मिलकर पैसा जमा किया था। उन दोनों का नाम 'कल्कि' पत्रिका में छपा था। मुहम्मद अली के सामान की नीलामी में लिया गया हमारा जी. ई. सी. रेडियो अब गड़बड़ करने लगा था।

रेजीमेंटल बाजार के सामने छोटी सी मस्जिद में एक सब्जी तथा परचून की दुकान लूटी गयी। पुलिस की लाठियों से एक बच्चा घायल हो गया।

कृष्णस्वामी को अप्रेंटिस का काम मिला और वह उत्तर भारत में चला गया। क्रिकेट के खेल में एक दल रंगरामानुजन का था, एक मेरा। अब हमारे साथ तीन तेलुगु लड़के भी खेलने आते थे। हालांकि हम जान-बूझकर तमिल में बातें करते और उन्हें

तंग करते पर जब वे हैदराबाद और सिकंदराबाद की घटनाएं सुनाते तो हम उन्हें ध्यान से सुनते।

गोकू मुझे आउट करता रहा। हमारे ही मैदान में कुछ मुसलमान हाकी खेलते थे। वे अपनी सफेद गेंद जान बूझकर हमारी ओर धकेलते। एक बार हमारी टोली के कामेश नाम के लड़के ने उनकी गेंद उठाकर दूसरी ओर फेंक दी। सभी हमें हाकी से मारने आ गये। पद्मनाभन नाम के लड़के का सिर फोड़कर गायब हो गये। पद्मनाभन के पिताजी बड़े अधिकारी थे। हमने सोचा वह जरूर कुछ करेंगे। पर वह चुप रहे। हम दो दिन तक खेलने नहीं गये। बाद में सुना कि वे भी नहीं आये। हम फिर वहीं खेलने गये। उसी मैदान में हमने बड़ी मेहनत और पैसों से पिच तैयार किया था, सो उसे छोड़ने का मन नहीं हुआ। रंगरामानुजन ने बढ़िया गेंदबाजी की। कृष्णस्वामी के जाने के बाद रंगरामानुजन कप्तान और मैं उप-कप्तान की हैसियत से खेलते रहे। हम दूसरे दल के साथ भी खेले। वह दल इक्यासी रन बनाकर आउट हो गया। पर जब हम खेले तो उनके स्कोरर के हिसाब से हम लोगों ने कुल सतहत्तर रन बनाये थे। हमारे स्कोरर के हिसाब से हमने एक सौ दो रन बनाये थे। वे चिल्लाये 'बेईमानी है' और रंगरामानुजन से हस्ताक्षर करवाने चाहे। वह और अन्य खिलाड़ी भाग गये। मैं ही रह गया। मैंने 'रामास्वामी' नाम से दस्तखत किये और भाग आया। मैं शून्य पर आउट हो गया था चूँकि उनके दल में भी गोकू की तरह एक अच्छा गेंदबाज था।

सहसा एक दिन रंगरामानुजन का परिवार कहीं चला गया। फिर वे सिकंदराबाद नहीं लौटे।

क्रिकेट दल का कप्तान अब मैं हो गया।

3

तेजी से घर की ओर लौटते हुए चंद्रशेखर को नरसिंहराव ने रानीगंज के पुल के पास रोक लिया। 'कहां जा रहे हो ?' उसने पुरजोर गुस्से के साथ तेलुगु में पूछा।

'क्रिकेट प्रैक्टिस।'

'कहां ?'

'कॉलेज में।'

'थू-थू।'

'काहे को ?'

'नासिर अली खान कप्तान है न ?'

'हां, तो ?'

'थू।'

'अच्छा तो मैं चलूं। साइकिल में लाइट तक नहीं है। सुना है इधर लोग पकड़ लेते हैं। जानते तो हो ही यहां पुलिसवाले कौन हैं। मुसलमान ही तो हैं। तभी हमें धर पकड़ते हैं। शहर का कौन हरामजादा रजाकार बत्ती के साथ साइकिल चलाता है ? बस छुरा-कृपाण लिये फिरते हैं। उन्हें क्यों नहीं पकड़ते ये पुलिसवाले ! और तुम ? बेशर्म कहीं के ! उनके साथ खेलने जाते हो ? यह कोई खेलने का वक्त है ? नासिर अली खान की सेवा कर रहे हो। कौन है यह नासिर अली खान ? जानते हो ? इसी का बाप तो रजाकारों को प्रशिक्षण दे रहा है न ?'

चंद्रशेखर को आश्चर्य हुआ। नरसिंहराव हर सामने वाले को इतना बेवकूफ क्यों समझता है ? वह खुद नासिर अली खान के बाप के बारे में अच्छी तरह से जानता है। नासिर अली खान के परिवार को भी उसने अच्छी तरह से देखा है। नासिर अली खान की बहन इनसान तो नहीं लगती। उसके बाप की भी मूंछें और लाल आँखें माइनस हो जातीं तो वे भी विशेष सृष्टि कहलाते। नासिर अली खान उसे जरूर कहीं-कहीं अपनां-सा लगता। अपनी रईसी के बावजूद भी वह अक्सर आम

लोगों के साथ मिलता-जुलता । चंद्रशेखर ने आज अपनी आंखों से देखा । आज कुल मिलाकर यही घटा था ।

नासिर अली खान के 'नेक्स्ट' कहने के बावजूद भी दूसरा खिलाड़ी खेलता रहा था । नासिर जोर से चिल्लाया, 'आइ से, गेट आउट ।' चंद्रशेखर ने अपने लिए आदेश की प्रतीक्षा नहीं की और खुद बैट लेकर विकेट के सामने खड़ा हो गया ।

उसके लिए वह पूरा दृश्य अजनबी था । चारों ओर नेट बंधा हुआ था । उसने नेट के बीच क्रिकेट तो कभी खेला नहीं था । गेंदबाज की दिशा को छोड़कर चारों ओर मजबूती से बंधा हुआ नेट । चंद्रशेखर गेंदबाज की ओर देखता रहा । यह तो अच्छा हुआ पहला गेंदबाज धीमी गति वाला था । गेंद चंद्रशेखर के सामने दस फुट की दूरी पर उछली और आगे आयी । चंद्रशेखर ने हल्के से उसे बल्ले से छुआया । गेंद सही जगह पर मारी गयी थी शायद, तेजी से वापस चली गयी । दूसरी गेंद कुछ तेज थी । सीधी चंद्रशेखर के पास आयी । सुरक्षात्मक ढंग से उसने उसे मोड़ दिया । गेंद पीछे की ओर तेजी से लुढ़ककर नेट तक चली गयी ।

पर उसके बाद जितनी देर भी वह खेलता रहा एक बार भी उसने न गेंद रोकी और न उसकी पिटाई की । दो बार गेंद विकेट पर जा लगी । एक बार सीधी उसकी जांघों में लगी ।

चंद्रशेखर नासिर अली खान के आदेश की प्रतीक्षा करता रहा, उसके बारे में नासिर ने जो भी भ्रम पाले होंगे, उसका जबर्दस्त मोह भंग हुआ होगा । उसका क्रिकेट से कभी कोई संबंध नहीं रहा । किसी भी परिस्थिति में अच्छा खेलना चाहिए । अच्छे खेल से क्या मतलब हुआ ? सभी खेलों का एक आदि है और एक अंत । आरंभ से अंत तक की यात्रा अपने ढंग की होती है । इस यात्रा को जो सफलता के साथ पूरा करता है, वह अच्छा खिलाड़ी माना जाता है । पर वैसा खेलने से ही किसी को अच्छा खिलाड़ी नहीं कहा जाता । खेल की सारी तकनीक से अच्छा परिचय आवश्यक है । पूरे शरीर को मुस्तैदी के साथ तैयार रखना जरूरी है । सारी संवेदनाओं का एकीकरण होना चाहिए । नासिर अली खान के खेल में ये सारे गुण मौजूद हैं । पता नहीं, वह इनके बीच क्यों खेलने चला आया । चारों गेंदबाज गेंदें फेंकते जा रहे थे । पर इतनी तेज गेंद क्यों फेंक रहे हैं ? बाहर से देखने पर यह नेट प्रैक्टिस जितनी आसान लगती है, भीतर आ जाने पर कितनी भंयकर लगती है ! यह नेट बार-बार हिल रहा है । पर उससे पहले जो खिलाड़ी खेल रहा था, वह पूरे आत्म-विश्वास के साथ खेल रहा था । पूरे उत्साह में था वह । उसका उत्साह इतना अधिक था कि कप्तान के आदेश के बावजूद वह खेलता रहा था । उसे थोड़ी देर और खेलना चाहिए था । या मुझे थोड़ी देर बाद खिलाता । गेंद फेंकने से तो मैंने मना ही

कर दिया था। बल्लेबाजी के लिए कैसे ना कहता ? फिर वह पूछता,'यहां क्यों आये हैं ?' सुंदर सिंह के हाथ में दोबारा गेंद आ गयी है। पता नहीं क्यों, इसके साथ मेरी कभी नहीं पटी। ऊपर से एक न एक घटना। उसके घर के पास चार घरों में मैंने नाटक के टिकट बेच दिये। जब यह पहुंचा तो लोगों ने मना कर दिया। बाद में मेरे पास आकर बहुत चिल्लाया। फिर वह पद्मा राव वाली बात। विज्ञान वर्ग में यूं भी लड़कियां कम होती हैं। उनमें भी देखने में कुछ ठीक-ठाक यही लड़की है। प्रैक्टिकल में एक-एक मेज के लिए दो-दो छात्रों की जोड़ी बनायी जाती है। पहले सुंदर सिंह और पद्मा राव की जोड़ी तय हुई थी। पर उसने स्वयं डिमांस्ट्रेटर से कहकर अपनी सीट बदलवायी। शायद सुंदर सिंह की कलमें देखकर घबरा गयी हो। या फिर आत्मसुरक्षा की भावना हो। हाजिरी के रजिस्टर में उसके और मेरे नाम के बीच कम से कम बीस-तीस नाम रहे होंगे। पता नहीं कैसे हम दोनों को एक ही मेज दी गयी। सुंदर सिंह की गेंदबाजी में वह क्रोध साफ झलक रहा है। जंगलीपन के साथ गेंदबाजी कर रहा है। कहीं गेंद सिर के ऊपर निकलती है, तो कहीं विकेट के ऐन सामने। फिर बीच में रेस्ट भी नहीं देता। यह चटाई भी अलग से जान खा रही है, इसे ठीक से ठोंका ही नहीं। कहां- कहां उठी हुई है। मेरे पैरों के सामने फटी हुई है। पैर उसमें अटक जाते हैं। यह गेंद थोड़ी धीमी। यह लड़का धीमी गेंद फेंकता है। गेंद उसके हाथों से उछलकर तिरछी दिशा में आती है। इतनी आसान गेंद पता नहीं क्यों मैं नहीं खेल पाया। गेंद कहीं आयी और बल्ला कहीं पड़ा। नेट प्रैक्टिस के वक्त कोई नहीं रोकता। अच्छी गेंद को लोग मार कर ही रहते हैं। मुझसे पहले जो लड़का खेल रहा था उसने गेंद को खूब पीटा। मैं रोकना चाहता था, पर वह भी नहीं कर पाया। हर बार गेंद मेरे बल्ले से आगे निकल जाती है। फिर एक बार सुंदर सिंह के हाथ में गेंद। रास्कल, हरामी... इसे कौन गेंदबाजी करने देता है। हर गेंद फुल टॉस जाती है। इसे कहीं मैच में खिलाया जायेगा ? न! यहीं इसकी पूछ है। हां, सब यहीं हुड़दंग मचाते हैं। मैं तो फंसा हूं न, सो हुड़दंग नहीं मचा पा रहा। यह गेंद सीधी विकेट के सामने आ गयी है। खास कुछ करना नहीं। बायां पैर आगे करके बल्ला नीचे कर देना है, बस। गेंद अपने-आप एक्स्ट्रा कवर की दिशा में चली जायगी। छिः, छूट गयी यह गेंद भी। फिर बोल्ड। मैच में यह अपमान नहीं सहना पड़ता। आउट होने के बाद सीधा वापस जा सकते हैं। यहां तो खुद विकेट ठीक करो और दोबारा तैयार हो जाओ। ऐसा भी क्या खेलना। एक-एक करके सभी गेंद पीछे नेट में सीधी लगती हैं। उस गेंद को वापस उठा कर भी दो। मैं बल्लेबाजी का अभ्यास कर रहा हूं या गेंद उठाकर फेंकने का। नासिर के हाथ में इस बार गेंद है। पूरे हैदराबाद में, सबसे बढ़िया ऑफ ब्रेक गेंद

फेंकने वाला गेंदबाज है वह। अगर मैं भी पांच वर्ष की उम्र से ही क्रिकेट का खेल खेलना शुरू कर देता और पूरी ईमानदारी के साथ वही खेलता रहता तो जरूर इसकी तरह या इससे बेहतर गेंद फेंक सकता था। कह नहीं सकता। क्रिकेट पूरे शरीर की चुस्ती का खेल है। वह चुस्ती मेरे शरीर में कहां ? नासिर की गेंद। काफी पहले टप्पा खा गयी है। बायां पैर फैलाकर पीछे की ओर तेजी से मारना होगा। ठीक से मार पाया तो स्कवायर लेग की दिशा में चौका तो रखा ही है। हाय, चूक गया मैं। इससे पहले कि गेंद मेरे पास आती मैंने बल्ला घुमा दिया। क्या हुआ ? जांघ में चोट आ गयी। नासिर ने 'सॉरी दोस्त' कहा। उसे सॉरी कहने की क्या जरूरत ! यह तो मेरी बेवकूफी है। पर क्या मुझमें प्रतिभा नहीं है ? वरना मैं एक टीम का कप्तान साल भर कैसे रह पाया ? पर मेरी टीम में छोटे-बड़े सब शामिल थे। मुश्किल से तीन लड़कों के पास क्रिकेट के जूते रहे होंगे। शुरू में तीन चार महीनों तक तो मैं भी बगैर जूतों के ही खेलता रहा। बाद में जूते सिलवाये। सिर्फ बारह रुपये में। पर इतना अच्छा नहीं सिला था। पेड़ के नीचे बैठने वाला मोची इससे बेहतर और क्या सिलेगा। ठीक ही तो है। बस, यह चटाई ही जान खा रही है। नासिर की अगली गेंद। इसे भी तो किसी तरह खेलना ही होगा। हे भगवान। चलो रोक लिया। पीटने वाली हर गेंद को मैं रोक रहा हूं। अब वह मोटू गेद फेंक रहा है। वह गेंद फेंकता नहीं, उछालता है। इसी तरह उछालता रहा तो इसे मैच में कौन खिलायेगा। इसकी गेंद लुढ़कती हुई ही जाती है। पता नहीं कैसे फेंकता है यह। जैसे हमारी टीम का रामनाथन। उसका तो नाम ही 'ग्राउंड बॉल बौलर' रखा गया है। छिः, यह गेंद भी चूक गयी। आज के बाद नेट प्रैक्टिस के लिए कभी नहीं आना होगा। पर इसके बगैर कॉलेज की टीम में जगह भी नहीं मिल सकती। निश्चित रूप से नहीं। अगर वह असाधारण रूप से बेहतर खिलाड़ी होता तो शायद संभव होता। पर जहां तक नासिर का प्रश्न है, उसकी प्रतिभा के बारे में कोई संदेह नहीं। वह फील्डिंग भी अच्छी करता है, बाउलिंग भी। पर उसने अभी तक बल्लेबाजी नहीं की। हो सकता है, कप्तान होने की वजह से और दूसरे खिलाड़ियों के प्रति अधिक प्रतिबद्ध रहना चाहता हो। या हो सकता है, उसे इतना अधिक आत्म-विश्वास हो। पर वह औरों को अवश्य अवसर देता रहा है। कभी तो खिलाड़ियों को चार या पांच बार से अधिक गेंदबाजी नहीं करने देता। पर सुंदर सिंह से घंटों गेंदबाजी करवा रहा है। मैं तो तंग आ गया। इस नेट के भीतर कहां भागूं कि अपना सिर फूटने से बचा सकूं। पर हां, . .. जगह तो इधर-उधर इतनी है कि थोड़ा-बहुत अपने को बचा लूं। कितने बड़े-बड़े खिलाड़ी नेट के भीतर अभ्यास करते हैं। मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है। यहीं, कॉलेज के इसी

मैदान में देखा है। देखते-देखते, कितनी इच्छा होती थी कि खुद भी किसी दिन यूं ही खेल सकूं। और इसी कारण तो मैं अपनी टीम के शरारती लड़कों की सारी शरारतें बर्दाश्त करता रहा था। माथा फोड़ना पड़ता था, बालू, गोकू, कामेश, रामनाथ, अलेक्स के साथ ? लगता है, वेंक्टेश और सुंदर सिंह एक ही दुकान से चावल खरीदते हैं। तभी न दोनों ही बल्लेबाज का सिर फोड़ने में लगे रहते हैं। यह गेंद ! अगर इसे बायीं ओर मारूं तो उछलकर बाहर की ओर लुढ़क जाती है। नासिर की अगली गेंद ऊपर जैसे हवा में तैरती हुई आती है, घूमती-घूमती सी। ठीक मेरे आगे चार पांच इंच पहले जमीन पर टप्पा खाती है। इसे आगे बढ़कर मारना था। या फिर बल्ले को टप्पा खाने के पहले ही आगे कर यूं ही 'पुश' करना था। देखा जाये तो यह खतरनाक गेंद है। अगर इसे छेड़ा नहीं जाता, तो आउट होना निश्चित था पर इसे घुमाकर मारना चाहा। बस, साफ बौल्ड। पता नहीं नासिर अब भी 'नेक्स्ट' क्यों नहीं कहता। क्या वह मुझे पूरी तरह अपमानित करना चाहता है ? हो सकता है, उसके साथ खेलने की मेरी बेवकूफी पर वह मन ही मन हंस रहा हो। एक साल तक फालतू खेलों में सिर खपाने के बाद, अब कहां से कॉलेज की टीम में जगह मिलेगी ! मैं अब यहां खड़ा नहीं रह सकता। नहीं खेलूंगा। मुझे नहीं चाहिए नवाबों या जागीरदारों का संबंध। मुझे नहीं चाहिए। मुझे नहीं . .. ..'नेक्स्ट बैट्समैन।'

चंद्रशेखर नरसिंह राव का चेहरा देखता रहा। बड़ा प्यारा चेहरा है उसका। पर रंग सांवला। ठीक तेलुगु चेहरा। पर आंध्र का निवासी नहीं कहलाना चाहता। तेलंगाना का निवासी है यह। पता नहीं कितनी पुश्तों से इसका खानदान हैदराबाद में रह रहा है। घर पर अक्सर ये लोग उर्दू में बातें करते हैं। आधा मुसलमान तो यह खुद ही है। और मुझसे पूछ रहा है ! पर यह नहीं जानता कि आज प्रैक्टिस के बाद नासिर ने उससे आकर क्या कहा। क्या बोला था,'आज क्या हुआ दोस्त ?'

'ठीक है, मैं चलता हूं, साइकिल में बत्ती नहीं है।'

अपने ऊपर गुस्सा आया। क्यों कह दिया कि बत्ती नहीं है। पर नरसिंह राव ने कुछ नहीं कहा। उसे छोड़ दिया।

चंद्रशेखर जेम्स स्ट्रीट और किंग्सवे को जोड़ने वाली टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों से होकर जाने लगा। पर इस सड़क में इतनी भीड़ रहती है कि आसानी से साइकिल नहीं चलायी जा सकती। पता नहीं क्यों आज वहां भीड़ नहीं थी। मुश्किल से चार-पांच लोग ही नजर आ रहे थे। यहां तो कोई बलवा नहीं हुआ। यहां के सारे मुसलमान दूसरी जगह जाकर बस गये थे। वे सिकंदराबाद के मुसलमान इलाके में चले गये थे। कई हिंदुओं ने अपने परिवारों को बाहर भेज दिया था। शायद इसी कारण यहां

भीड़ नहीं नजर आ रही। सारे परिवार निम्न मध्यम-वर्गीय हैं। सब्जी बेचने वाले, परचून की दूकान वाले, या पान बेचने वाले। यहां रहने वाले अक्सर कुछ चबेने बना कर ठेलों में बेचने जाते हैं। इनके बनाये हुए पकौड़े बड़े स्वादिष्ट होते हैं। मूंगफली के तेल में बनाये सेव भी उम्दा होते हैं। एक आने के लेकर खा लो, तो पेट भर जाता है। होटल वाले इसी को दुअन्नी में बेचते हैं। इकन्नी में स्वादिष्ट चीजें बनाकर पेट भरने वाले सब जाने कहां गायब हो गये। अब वे ही सब शरणार्थी लोग बेचने लगे हैं। इस शहर में हजार लोग चीजें बनाते रहें, तब भी खाने वालों की कमी नहीं रहेगी। साल भर से यही स्थिति चलती आ रही थी कि एक दिन सहसा 'ज्वायन इंडियन यूनियन डे' के दिन मामला गंभीर हो गया। जुलूस, पुलिस का लाठी चार्ज, सभी बातें हैदराबाद में आम हो गयीं। सिकंदराबाद की दूकानें बंद हो गयीं। बच्चों ने स्कूल जाना छोड़ दिया। सब शांत हो गया। पर रेजीमेंटल बाजार में एक मुसलमान की चक्की में तोड़-फोड़ की घटना घटी। परिणामस्वरूप तीन हिंदू दर्जियों की दुकानों का भुरता बन गया। फिर रजाकार, आर्यसमाजी, पुलिस. .. ।

चंद्रशेखर इसलामिया स्कूल के पास से गुजर रहा था। इसके आगे पुलिस वाला जरूर रहता है। इसलिए अब साइकिल से उतरना ही होगा।

सहसा अंधेरे को चीरकर दो व्यक्ति निकल आये। एक ने डपटकर पूछा, 'कौन है बे ?' दूसरे ने जवाब दिया, 'बोम्मन है, साला !'

'मारो साले को !'

चंद्रशेखर को सिर्फ इतना याद रहा कि उसके सिर पर दो बार वार किया गया।

4

चंद्रशेखर अचेत होकर गिर पड़ा। साइकिल उसके ऊपर गिरी, यही गनीमत हुई। वरना, सारी मार उसे खानी पड़ती।

तभी अगली गली से तीन-चार आदमी भाग कर आये। वे भी चिल्लाते हुए आ रहे थे। उनको देखते ही दोनों ने चंद्रशेखर को मारना छोड़ दिया और सिर पर पैर रखकर भागने लगे। पीछे आये हुए लोग भी उनका पीछा करते हुए भाग गये।

चंद्रशेखर लड़खड़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ। पचास गज की दूरी पर सिकंदराबाद का बाजार मोंडा लगा हुआ था। फिर भी उसके आस-पास उसे कोई नजर नहीं आया।

चंद्रशेखर साइकिल धकेलता हुआ मोंडा की ओर चल दिया। उसे खुद आश्चर्य हुआ कैसे वह भारी चोट से बच गया। मारने वाले शायद सिर्फ मारना चाहते थे। जान लेने का कोई इरादा नहीं था उनका।

मोंडा में भीड़ बिल्कुल नहीं थी। पहले तो चबूतरे पर ही नहीं नीचे भी पटरी लगा कर बेचने वाले बैठा करते थे। उस ऊंचे चबूतरे पर सभी सब्जियों की दुकानें थीं—प्याज, बैंगन, मिर्च, गुवार की फली वगैरह। नीचे पटरी पर पालक तथा हरी सब्जियों की दुकानें। नन्हीं-सी कंदील जलाकर वे देर रात तक धंधा करते थे। युद्ध के दिनों में जब आटे का अकाल पड़ा था, तो लोग मूंग की दाल के साथ पालक खाया करते थे। उन दिनों पालक के अलावा कुछ नहीं मिलता था। बुजुर्ग लोग रोज पालक खाकर तंग आ जाते और बच्चों को पालक पच जाता। दोपहर ग्यारह बजते ही फौज की ट्रकें रास्ता रोककर खड़ी कर दी जातीं और फौज के ठेकेदार सारी सब्जियां लेकर चलते बनते। दाम चाहे जो भी हो, वे बगैर मोल-भाव के खरीद लेते। तब भी बैंगन, वह भी नागपुर का बैंगन, एक आने में दो सेर के हिसाब से बिकता। एक रुपये का चालीस सेर। लोग उसे मजदूर की सहायता से

बोरी भर खरीद लाते, दिन में उसके टुकड़े कर धूप मे सुखाते और बड़े-बड़े मिट्टी के मर्तबानों में भरकर रख देते। कुछ दिनों से बैंगन नहीं दीख रहा। बाहर से हैदराबाद में कोई सामान नहीं आता। सामान के बदले पता नहीं क्या-क्या आने लगा है। रिफ्यूजीस। इसके हिज्जे क्या होते हैं ?

चंद्रशेखर मोंडा से साइकिल निकालने लगा। शाम के झुटपुटे में मोंडा शांत हो गया था। दिन भर की सारी भीड़ जाने कहां गायब हो गयी थी। इक्के-दुक्के लोग ही नजर आ रहे थे। पचास-सौ सब्जीवाले जो भी रहते हैं, वे जल्दी लौट जाते हैं। एकाध दुकानें ही नजर आती हैं। थोड़ी-बहुत चीजें जैसे, प्याज, लहसुन, मिर्च वगैरह ही बची रहती हैं। कंदील की बुझती रोशनी में पैसों का व्यवहार चलता। वह भी केवल आठ आने या अधिक से अधिक साढ़े आठ बजे तक, फिर सभी दुकान बढ़ाकर अपने-अपने घर लौट जाते।

घर लौट जाते हैं क्या ? उनका घर-बार कैसा होगा ? अक्सर उसने देखा है कि सब्जीवाले सारी सब्जी एक टोकरी में भरकर उसे बोरी से ढंक देते और उस पर ही लेट जाते। इसी तरह की कितनी छोडी-मोटी बोरियों के ढूह वहां उग आते।

चंद्रशेखर अब भी साइकिल धकेल रहा था। क्रिकेट के जूते ताल देते जा रहे थे। मोंडा की सड़क सिमेंट की बनी थी। पर ठेलों के आवागमन की वजह से कई जगह दरारें पड़ गयी थीं। भूल से एक गड्ढे में उसका पैर पड़ गया। उसके जूते कीचड़ में सन गये।

चंद्रशेखर धीमे ही चल रहा था। उसे तनिक भी घबराहट नहीं हो रही थी। उसने मारने वालों का चेहरा तक ठीक से नहीं देखा था। पर उन्होंने उसका चेहरा अवश्य देखा होगा। निश्चित रूप से वे शरणार्थी नहीं थे। सिकंदराबाद में आये शरणार्थी एक फर्लांग दूर स्टेशन के आस-पास बसे हैं। उनमें भी स्त्रियों की संख्या अधिक है। बूढ़ी से नन्हीं बच्ची तक। बच्चों की संख्या तो गिनी नहीं जा सकती। इस छोटी-सी जगह में कितने लोग शरण ढूंढते चले आये हैं। जो इस तरह का जीवन अब जी रहे हैं, साफ जाहिर है, इससे पहले वे जहां भी रहे होंगे इससे बदतर स्थिति में रहे होंगे। तभी तो उन लोगों ने इसे अपनाया है, बेहिचक। पर वह उनका अपना प्रांत, अपनी भूमि थी। भिखारी भी नयी जगह में कुछ दिन अजनबीपन-सा महसूस करता है। ये शरणार्थी फिर किस बूते पर यहां आये हैं। वह कौन-सा विश्वास है, जो इन्हें यहां ले आया है और वह कौन-सा विश्वास है, जिसे खोकर उन्होंने अपनी भूमि छोड़नी चाही ? इसी तरह उत्तर में कितने लोग आ गये हैं। कहीं पूरा का पूरा गांव लूट लिया गया। सैकड़ों औरतों से बलात्कार हुआ। कितनों की हत्या कर दी गयी। कितने लोग भगा दिये गये। सारी संपत्ति छीन ली गयी। शरणार्थियों का

कैंप तक लूटा गया। शरणार्थियों को लाने वाली रेलगाड़ियों को रोककर बलात्कार, हिंसा, हत्या की घटनाएं घटीं। लोग रेलगाड़ी की छतों पर सफर करके भागते रहे। दो डिब्बों के बीच की जगह में लटककर सफर तय किया है लोगों ने। कई पैदल भागे। उन्हें पकड़ा गया, उनके सामने उनकी बहू-बेटियों की बेइज्जती की गयी। सभी समाचार रेडियो में सुने गये हैं या अखबारों में देखे गये हैं। कुछ भी हो, इसका उतना असर नहीं पड़ता जितना प्रत्यक्ष का प्रभाव पड़ता है। उस पर अब जो मार पड़ रही है, इसके सहारे भी वह हजारों मील दूर घट रही घटनाओं की छाया मात्र की कल्पना कर सकता है। यहां ये जो करोड़ों की संख्या में मुसलमान आ जुटे हैं वहां करोड़ों हिंदू और सिक्ख आ गये हैं। चारों ओर आतंक, भय, आक्रोश और बदले की भावना बढ़ती जा रही है। कितनी अजीब बात है, इस तनाव के बीच वह महामानव 'रघुपति राघव राजा राम' गा रहा है। इस व्यक्ति को उसने देखा तक नहीं। वह हैदराबाद क्यों नहीं आते ?

चंद्रशेखर के रास्ते में तीन गाय खड़ी थीं। पता नहीं किसकी गाय है। मोंडा में गाय और बछड़े काफी संख्या में हैं। कोई इनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता। एक-एक दुकान के आगे ये खड़ी रहती हैं। दुकानदार की नजर इधर-उधर हुई नहीं कि बीन्स और आलू जुगालने लगती हैं। शामत तो केले और तोरई की भी आती है। दुकानदार की मार-डांट से पूरी तरह बेअसर रहती हैं। यहां दुकानदार ग्राहक से आने दो आने के लिए झिकझिक करता रहता है, उधर आराम से वे अठन्नी की सब्जी चबा जाती हैं। इस तरह उन्मुक्त खान-पान के कारण ये दूध भी काफी देती हैं।

चंद्रशेखर के एक हाथ ने साइकिल पकड़ी और दूसरे हाथ से उसके माथे को खुजलाया। अब गाय ने अपनी गर्दन आगे कर दी। उसकी देखादेखी और दो गाय भी आगे आयीं और अपनी गर्दन साइकिल के हैंडल से खुजलाने लगीं। चंद्रशेखर के हाथ दुखने लगे, नाखूनों के छोर जलने लगे। पर गायों ने पीछा नहीं छोड़ा। चंद्रशेखर को सहसा अपनी भैंस की याद आयी। उसे दुख था कि उसने आज उस पर हाथ उठाया। पर भैंसें इतनी आत्मीयता के साथ प्यार नहीं जतातीं। जो भी करतीं कृत्रिम लगता। पूंछ हिलाने से लेकर भागने तक की सारी क्रियाएं अपरिपक्व-सी लगतीं। पर गाय के साथ ऐसा कतई नहीं। पता नहीं किसकी हैं ये। मेरे साथ इतनी आत्मीयता दिखा रही हैं, मानो बरसों की पहचान हो।

'जाओ, जाओ।' चंद्रशेखर ने उन्हें हड़काया। वे अनमनी-सी रास्ते से हट गयीं। उसके साइकिल का हैंडिल एक गाय के पेट में कुछ छू गया और गाय जैसे चौंक गयी।

मोंडा के चारों ओर चारदीवारी की बनी इन दुकानों में लगभग सभी आज

बंद थीं। कई दुकानों में बत्ती तक गुल हो चुकी थी। जैसे उन्हें यकीन हो कि शाम के बाद व्यापार का सवाल नहीं उठता। सिर्फ एक दुकान खुली हुई थी। तेल की दुकान। आगे दुकान और पिछवाड़े पर चक्की तथा मकान बना हुआ था। केवल यही एक दुकान ऐसी थी जहां सेर दो सेर से लेकर पीपा भर तेल खरीदा जा सकता है। दुकान पर छोटा लड़का बैठा हुआ था। चंद्रशेखर ने उससे पूछा, 'तुम्हारी मां कहां है ?'

'भीतर।'

'उसे बुला दोगे।'

लड़का अंधेरे को चीरकर भीतर चला गया। कुछ देर बाद, एक मोटी सी राजस्थानी महिला आयी। उस हल्की रोशनी में भी उसके कपड़ों पर पड़े तेल के दाग साफ पहचाने जा सकते थे।

वह बोली, 'बाती हो गयी और अब आये हो ?'

चंद्रशेखर बोला, 'मैं तेल लेने नहीं आया। मैं अपने जूते यहीं छोड़ जाऊं ? कल सुबह लेने आ जाऊंगा !'

उसकी समझ में शायद कुछ नहीं आया था। फिर भी उसने सिर हिला दिया। चंद्रशेखर साइकिल किनारे खड़ी करके सीढ़ियां चढ़कर दुकान के अंदर गया।

'क्यों आये हो इस अंधेरे में ?' उसने पूछा, 'पिताजी साथ नहीं आये क्या ?'

'कॉलेज गया था। लौटते देर हो गयी।'

'जल्दी घर चले जाओ। यहां आस-पास काफी बदमाश हैं।' उसे सहसा जैसे शक हो गया।

'तुम्हें किसी ने पीटा है क्या ?'

चंद्रशेखर ने जूते उतारते हुए उसे एक बार देखा। फिर बोला,

'हां।'

वह औरत घबरा गयी। उसकी आवाज सुनकर भीतर से एक और आदमी आया।

'तुम चुप रहो मां।' उसने कहा।

'कहां मारा रे, कहां चोट लगी ?' उस महिला ने चंद्रशेखर के कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

'पीठ पर ही चोट लगी। इतने में ही कहीं से कुछ लोग और भाग आये, तो ये लोग मुझे छोड़कर भाग गये।'

'कौन आये थे भागकर ?'

'समाजी' जवाब दिया बड़े लड़के ने। तभी महिला का ध्यान लड़के पर गया।

'तू भीतर जा न पहले।'

'तुम चुप रहो मां।' उसने मां को चुपाया।

'कहां मारने आये थे तुमको।'

'हाई स्कूल के पास।'

'तुम उन्हें पहचानते हो ?'

'नहीं।'

'तू जा न भीतर।' वह महिला चिल्लाई। तुरंत चंद्रशेखर को देखकर बोली, 'तू जा यहां से अब। तुम्हारी वजह से यहां भी बलवा हो जायेगा।' उसने तेल के पीपे भीतर खिसकाना शुरू किये।

चंद्रशेखर ने जूते साइकिल की हैंडिल से बांध लिये। इसी दुकान से उसके पिताजी बरसों से तेल खरीदते आ रहे हैं। बीच में कुछ दिनों तक रेलवे में ही अनाज के साथ तेल भी बांटते रहे। पर वहां मूंगफली का तेल ही देते रहे। तिल का तेल लेने बाहर ही जाना पड़ता। इस दुकान से सेर या दो सेर तेल ही लेते। पर पिताजी चक्की के पास बैठकर ताजा तेल लेकर आते। यही महिला उसे और उसके छोटे भाई को अक्सर गुड़ देती। जब से उसका पति गुजरा है वह अकेली दुकान चलाती है। उसका लड़का भी अब बड़ा हो गया और सामाज़िक गतिविधियों में नियमित भाग लेता है। निश्चित रूप से उस दुकान पर भी कोई घात लगाये होगा। पर शुक्र है अब तक कुछ भी नहीं घटा।

नंगे पैर चलना भी कितना सुखद है। चंद्रशेखर स्टेशन रोड के बजाय घूमकर चला। एस. पी. जी. स्कूल का मैदान और चर्च जैसे उसके साथ ही चले आ रहे थे। सेंट थामस चर्च से लगे उस स्कूल का नाम एस. पी. जी स्कूल क्यों पड़ा, वह आज तक समझ नहीं पाया। एक जमाने में उस मैदान के चारों ओर दीवारें नहीं थीं। पहले सभी मैदान पार कर के जाते थे। पर अब गेट तक बंद कर देते हैं।

मनोहर टॉकीज। रैजीमैंटल बाजार की पश्चिमी सीमा। ऊपर सिनेमा हाल तथा नीचे दुकानें, मकान आदि। ऊपर हाल में सिनेमा का शो चल रहा है। कुछ ही देर बाद इंटरवल होगा। लोग आउट पास लेकर नीचे चाय पीने आते हैं। गोवर्धन की दुकान से लोग बीड़ी, लस्सी खरीदते हैं। ये जगहें आज भी वैसी हैं। दोपहर भर ये दुकानें तक ऊंघती रहतीं। शाम ही जगतीं। दर्जी की दुकानें तक शाम को ही चलतीं। जगह-जगह चार पांच लोगों का गुट बना रहता और गप्पबाज़ी चलती रहती। हरिगोपाल का मजमा इस वक्त भी कहीं न कहीं लगा ही होगा। हरिगोपाल का मकान यहीं कहीं आस-पास है। वह आठ साढ़े आठ बजे के बाद भी आराम से

घर पहुंच सकता है। पर उसकी बात ऐसी कहां। उसे तो अभी मील भर और जाना होगा। हरिगोपाल से वह बचना चाहता है।

चंद्रशेखर अब कच्ची सड़क से होकर चलने लगा। यहां बत्तियां नहीं के बराबर हैं। सड़क के दोनों ओर कई मकान बने हैं। कुछेक मकानों में बिजली भी है। अधिकांश घरों में कंदील की रोशनी बनी रहती है। लेकिन आज यहां भी सन्नाटा है। सेंट फ्रांसिस कांवेंट के हॉस्टल से हमेशा की तरह आवाजें आ रही हैं। पास ही सेंट मेरीज बोर्डिंग भी है। वह एक अनाथालय है। पर है लड़कों का आश्रम। दोनों बोर्डिंग एक ही चारदीवारी के भीतर हैं। अनाथ होते हुए भी लड़के हैं एक से एक चालाक। फिर जहां लड़कियां इतने पास रहती हों वहां लड़के, बदतमीज़ी से बाज नहीं आ सकते। लड़का और लड़की होने का एहसास इन्हें कम उम्र में ही हो जाता है।

उसे खुद हो गया है अब। इसके पहले, जिंदगी बगैर किसी उलझन के चल रही थी।

चंद्रशेखर कुसिनी चमारटोले से होकर निकला। बचपन में इस जगह का नाम सुनता तो उसे कोई गाली-सी लगती। पर यहां के निवासी भी, इसी नाम से हर जगह को जानते हैं। जहां इस शहर में तेलुगु या उर्दू बोली जाती है, इस जगह के लोग तमिल ही बोलते हैं। पर यह कैसी तमिल है ? चंद्रशेखर की समझ में कम ही आती। इस टोली में युवक अपने को बटलर कहते हैं। एकाध कार-ड्राइवर भी हैं। पुरुष कम ही बोलते। पांच-सात लोग मिलकर ताश खेलते होते तो भी वे चीखते-चिल्लाते कम ही थे। हो सकता है, जिन गोरों के यहां वे काम करते हों, वहां का रिवाज हो यह। पर औरतें ? उतनी ही अधिक बोलतीं। उनके आपसी झगड़े, आवाज के बल पर घंटों चलते। मार-पीट की नौबत कम ही आती। इस तमाम शोर के बीच पुरुष बीड़ी पीते हुए अक्सर चुप ही रहा करते। कुछ तो यूं ही सो भी जाते। उनके जगने के बाद तक भी अगर झगड़ा चल रहा होता तो वे तीन चार जमहाइयां लेते। पर इसी जगह, कीचड़, प्याज के छिलके, मुर्गियां और हड्डियां बिखरी रहतीं। कुत्ते और सूअर के साथ पकते मांस की गंध और गाली-गलौज की गंध भी वातावरण में घुली रहती। चद्रंशेखर की मनपसंद एकाध लड़की भी यहां रहती हैं। एक है पुष्पा, यह वह जान गया था।

चंद्रशेखर क्वींस हाईस्कूल के आगे निकल गया। यहां कितने स्कूल हैं ? पूरे सिकंदराबाद में लड़कियों के जितने भी स्कूल हैं उनमें क्वींस हाईस्कूल सबसे बड़ा है। काफी सम्मानित भी माना जाता है। इस स्कूल में हर साल नाटक होता है, और टिकट बेचे जाते हैं। नाटक ही नहीं, इसमें एक तमिल नाटक, एक तेलुगु

नाटक, दो-तीन लोकनृत्य, एकाध नृत्य, दो गीत, एकाध एकालाप, प्रधानाध्यापिका का भाषण, मुख्य अतिथि का विस्तृत भाषण सभी शामिल रहते हैं। चंद्रशेखर हर साल नाटक देखने गया है। क्योंकि हर बार, उसकी बहनों में एक न एक उस स्कूल की छात्रा रहती। पहले तो ऐसा कुछ नहीं लगता था। पर पिछली बार जब वह नाटक देखने गया, तो उसे कुछ संकोच हुआ था। भय, संकोच, प्रतीक्षा, लज्जा, हर्ष .... जाने कितने ही भाव.... एक साथ हावी हो गये। वह भी सहसा बोर्डिंग के लड़कों की तरह बदलने लगा है।

चंद्रशेखर ने पैर जमीन पर पटका। अब एक नयी कल्पना उसके जेहन में बसी रहती है। उसका कोई रूप नहीं। पर हां, बात का संबंध लड़कियों से जरूर है। पर उस लड़की को कोई काल्पनिक रूप तक नहीं दे पाया है वह। लड़की का मतलब है सिर्फ लड़की। बाहर जब किसी और लड़की को देखता है, तो भीतर की लड़की और भी तंग करने लगती है। कितनी ही लड़कियां उसे मानसिक रूप से तंग करने लगी हैं। पड़ोसिन प्यारी बेगम से लेकर चमारटोले की पुष्पा तक। उनके तो नाम वह जानता है। कितनी ऐसी हैं जिनके नाम तक वह नहीं जानता। नासिर अली खान की बहन का नाम वह नहीं जानता। क्या पता आज क्रिकेट भी उसी की वजह से खेलने गया होऊं।

चंद्रशेखर ने पैर जमीन पर पटके। साइकिल को धकेलकर चलते हुए, इस तरह बार-बार जमीन पर पैर पटकना अच्छा नहीं होता। एक बार अगूंठे में चोट तक आ गयी थी। इधर खून को देखकर जाने क्यों मन को शांति मिलती है। कई दिनों से मन इतना क्रूर हो गया है। आज भैंस को मारने के पीछे भी यही आक्रोश रहा होगा। उस वक्त तो कुछ नहीं होता, पर घंटों बाद उसकी प्रतिक्रिया होती है। चोट खाने के बाद ही महसूस होता है। नरसिंहराव की तरह भले और बुरे का निर्णय वह नहीं कर पाता। पर जब उस जैसे लोग अपना विचार, तर्क उसके सामने रखते हैं तो मन जैसे हिल जाता है। पर इसका पता कब लगता है ? जब कोई महिला उसे खदेड़ती है, 'जाओ, यहां बलवा मच जायेगा।'

पर तेल वाली महिला दरअसल उसे भगाना नहीं चाहती थी। मोंडा भी अब उतना सुरक्षित नहीं रहा। देश भर में जाने कहां-कहां हिंसक घटनाएं घट रही हैं। वे जगहें भी कभी, किसी जमाने में सुरक्षित ही रही होंगी। पर शैतान जब सवार होता है, तो अविश्वसनीय घटनाएं घटने लगती हैं। अभी भी घट रही हैं। मैं पुष्पा के लिए इस गलियारे से होकर जा रहा हूं। एक अनाम लड़की के लिए उसके भाई की कप्तानी में प्रैक्टिस के लिए जाता हूं।

नहीं ! नहीं ! नहीं ! चंद्रशेखर ने फिर पैर पटके। साइकिल के हैंडिल पर मुक्का

मार दिया। पैरों में चोट जरूर लगी होगी। चोट के कारण वह जूते नहीं पहन सकता और जूते के बगैर वह प्रैक्टिस के लिए नहीं जा सकता। चलो चार दिन छुट्टी। मन को खराब करने वाली भावनाओं से छुट्टी।

लांसर बैरक्स की चारदीवारी के भीतर भी वह साइकिल धकेलता हुआ गया। दो मील तक तो पैदल चला आ रहा था, अब थोड़ी देर के लिए साइकिल पर सवार होने की बात उसे ठीक नहीं लगी। सभी मकानों में बत्तियां जल रही थीं। बारह, ग्यारह, दस, नौ। जनार्दन अंडरवियर पहने कमरे में खड़ा था। आठ, सात—मन्नास का घर। मारिस, डेरिंस, जूली, लारा। जूली कोने में बैठी होगी। लारा टूटे ग्रामोफोन पर रिकार्ड लगाकर जमीन पर लेटी ताल दे रही होगी। मिसेज मन्नास सो रही होगी। मिस्टर मन्नास पी रहा होगा। तीन, दो—कासिम का घर। रेडियो पर उर्दू गीत बज रहा है। हैदराबाद रेडियो स्टेशन। अभी आधे घंटे बाद फरमाइशी गीत बजेंगे। पर अपने घर में तो मद्रास और त्रिची के अलावा दूसरा स्टेशन सुना ही नहीं जाता।

पिताजी नहीं लौटे शायद। मां बरामदे में ही थीं।'इतनी देर कैसे हो गयी ?'

'बस हो गयी।' चंद्रशेखर ने उत्तर दिया।

'यह भी कोई जवाब हुआ। देर क्यों हो गयी ?' मां ने फिर पूछा।

चंद्रशेखर साइकिल टिकाकर सीधे पिछ्वाड़े की ओर गया। भैंस ने अंधेरे में भी उसे पहचान लिया और डोलने लगी। चंद्रशेखर ने रस्सी खोलकर उसे ठीक से बांधा। भैंस के गले लग गया। भैंस ने पूंछ हिलायी।

वह जब भीतर आया, तो तेज रोशनी में मां ने उसका चेहरा देख लिया।'माथे पर चोट कैसे आ गयी ?' उसने पूछा।

'क्रिकेट खेलते चोट लग गयी।' चंद्रशेखर ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

5

मैं तो अब तक यही सोच रहा था कि पिताजी के रुपये अरपतनाट बैंक में डूबे हैं। पर वह अरपतनाट बैंक नहीं कुयिलोन बैंक था। अरपतनाट बैंक में तो हमारे बाबा के रुपये डूबे थे। अरपतनाट बैंक का तो काफी पहले दिवाला निकल चुका था। पता नहीं बाबा के कितने रुपये डूबे। अस्सी के करीब रहे होंगे। यानी हमारे वंश की नियति ही यही है कि बैंक में रुपये डूबते रहें।

कहा जाता था कि कुयिलोन बैंक का दीवाला निकलने का एक कारण सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर थे। ये तो बाद की सुनी बातें थीं। मैंने सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर के चित्र देखे हैं। हमेशा वे साइड पोज दिया करते थे। सिर पर बड़ा-सा साफा। कुछ इसी तरह की शक्ल रेलवे स्टेशन के कोने में बने शौचालय की दीवार पर'पुरुष' शब्द के ऊपर बनी रहती है। कहीं पर 'पुरुष', कहीं आदमी लिखा रहता है। दूसरी ओर एक महिला की शक्ल बनी होती है और'महिलाएं' लिखा होता है। हो सकता है उन दिनों सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर की ही शक्ल ऐसी रही हो, जिससे पुरुषार्थ टपकता हो।

मेरे पिताजी भी उन दिनों सिकंदराबाद के तमिलभाषियों की वेशभूषा में ही बाहर निकलते थे। कमीज अंदर करते थे और धोती के ऊपर कोट। अगर टोपी लगाये होते तो हम समझते कि वे दफ्तर जा रहे हैं। अन्यथा कहीं ओर वे नंगे सिर ही जाते थे। जब से मैंने पैदल चलना सीखा है, तब से मैं कई बार उनके साथ गया हूं।

उनके कान में लाल पत्थर का कर्णफूल चमकता और सिर की चोटी बांधकर वे सब्जी लाने या कभी राई लाने निकलते। लांसर बैरक्स में जब से हम रहने आये थे तब से, सब्जी हो या कपूर, उसके लिए हमें दो मील तक पैदल चलना पड़ता। मैं ढीली-ढाली नेकर और डबल ब्रेस्ट का कोट पहनकर अपने पिता के पास जा खड़ा होता। वह कोट काफी पहले, यानि जब मैं तीसरी या चौथी में पढ़ता था, तब सिला गया था। मैं उसे नवीं तक पहनता रहा था। इसलिए नहीं कि मुझे वह बेहद पसंद

था। बल्कि इसलिए कि उसे पहने बगैर पिताजी के साथ बाहर नहीं निकल सकता था।

दस कदम भी नहीं चले होते कि जाफर अली अपने प्यारे पौधों को पानी दे रहे दिख जाते, और पिताजी रुक जाते।'कहिये मास्टर', और वार्तालाप शुरू। पर जब से उन्हें मालूम हुआ कि हमारी भैंस को उनके पौधों से बेहद लगाव है, तब से यह बोलचाल बंद हो गयी। जाफर अली से आधा घंटा बात करते और इतने में मिस्टर मन्नास झांकते।'व्हाट मिस्टर', पिताजी कुशल-क्षेम पूछते और वहां आधा घंटा। मैं अकेला होता, तो भीतर जाकर प्याज छीलने में मिसेज मन्नास की मदद करता। पर जब पिताजी साथ होते, तो उन दोनों की अंग्रेजी ध्यान से सुनता। मन्नास की दोनों लड़कियां अगर दीखतीं, तो आंख चुरा लेता। कुछ दूर ही चलते कि केशव राव मिलता। कहता,'एमि बाबू', और पिताजी आधा घंटा और रुक जाते। वह टलता और फिर मासिला मणि मिलता। पिताजी सड़क से होकर कम चलते, गलियों से होकर ही हम अक्सर जाते। पिताजी हर गली में एक न एक मकान की ओर इशारा करके हमें बताते कि प्लेग के दौरान हम यहां रहते थे, या फिर बाढ़ के वक्त हम फलां जगह रहते थे। अगर वहां कोई बुढ़िया मिल जाती, तो उसके साथ शर्तिया आधे घंटे की बातचीत। कभी लगता, पिताजी जान-बूझकर उन गलियों से जा रहे हैं, ताकि अपने अतीत को कुछ याद कर सकें। यदि मोहनजोदड़ो की संस्कृति उस समय की गुफाओं में है तो सिकंदराबाद की संस्कृति उसकी छोटी-मोटी तंग गलियों में सुरक्षित है।

इन गलियों के मुहाने पर अक्सर ऊंचे पत्थर गड़े रहते हैं, ताकि गली के भीतर वाहन न जा सकें। न भी होता, तो उन गलियों में वाहन नहीं जा सकते। गलियां बेहद संकरी होतीं। गली के बीचो-बीच कहीं पर नालियां भी गंधाती रहतीं। अक्सर गलियां भी सीढ़ियों के सहारे कई तल्लों में बंटी होतीं। पर कुछ गलियां जरूर ऐसी थीं, जिनमें गाड़ियां या तांगे जा सकते थे।

तांगा हमारे यहां की विशेष घोड़ा गाड़ी है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बैठने वाला हर यात्री अपनी टांगें नीचे लटकाकर बैठ सकता है। यानी, उसमें अगर इतने ही यात्री बैठें, जितने बैठने चाहिए, तभी यह संभव है। पर तांगे वाले के अलावा जब छः सवारी हों, तभी लोग तांगा करते थे। आगे दो और पीछे चार। हमारे यहां तांगा ही किया जाता और हम अक्सर यूं ही बैठते।

तांगा करने हमें घर से स्टेशन तक लगभग एक मील पैदल चलना होता। नहीं तो दूसरी दिशा में कई गलियां पार कर मनोहर टाकीज तक जाना पड़ता। तांगा लाने बुजुर्ग कम ही जाते। बहुत ही छोटे लड़कों को भेजा जाये तो उनके भरोसे कोई तांगे वाला इतनी दूर आने को तैयार नहीं होता। लिहाजा तांगा लाने अक्सर मैं ही जाता।

बुदबुदाता हुआ आखिर मैं ही निकलता घर से। मॉरिस बरगद की एक डाल से दूसरी डाल पर उछलता। कई सालों बाद लांसर बैरक्स को जब छोड़ा तो अनेक व्यक्तियों/चीजों से अलग होना पड़ा। पर उस बरगद के पेड़ को छोड़कर जाना मेरे लिए सबसे अधिक दुखद था। जाट बंदर के खेल में कितने ही दिन इन ईसाई और मुसलमान लड़कों ने मुझे रुलाया था। कितनी बार तीली को खोजते हुए मुझे चारदीवारी की दीवार लांघनी पड़ी है। पर इसके बावजूद मैं बरगद और मॉरिस से कभी नहीं चिढ़ा। तांगा भी बुलाने जाता तो एक बार बरगद की एक डाल पर चढ़कर दूसरी पर उछलता, तभी आगे जाता। मॉरिस और उसके साथी आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखते। उनके लिए खेलने से अधिक महत्वपूर्ण किसी और कार्य की कल्पना भी असंभव थी।

लांसर बैरक्स से बुलावा आने पर तांगे वाले अधिक खुश नहीं होते थे। कुछ तो जवाब भी नहीं देते। उनमें से कोई एक पूछता, 'कहां जाना है ?'

अपनी टूटी-फूटी उर्दू में मैं उससे किराया पूछता। वह जो भी कहता मैं चुपचाप मान लेता और उसे ले आता। घर पहुंचते ही कहीं छिप जाता।

मां और पिताजी उससे किराये की बात करते। वह आठ आने कहता तो ये दो आने पर अड़ जाते। वह मुझे ढूंढ़ता। यह दोनों अब ढाई आने पर अड़ते। वह मेरे बारे में पूछता। काफी चख-चख के बाद वह तीन आने में राजी हो जाता। या फिर मेरे घरवालों को और खास तौर पर मुझे गालियां देता हुआ निकलता। मां और पिताजी मुझ पर बरसते। उन्हें क्या मालूम तांगा लाने में आजकल कितना झंझट है।

एक मील चलकर तांगा लाते भी किसलिए थे। तीन मील दूर कर्बला मैदान के टेंट सिनेमा हाऊस में लगी तमिल फिल्म देखने। सिकंदराबाद के अच्छे टाकीज में तमिल फिल्म साल दो साल में एक लगती थी। तेलुगु फिल्म चार- छः महीने तक लगातार चलतीं। हिंदी या उर्दू फिल्में पहले हैदराबाद में लगतीं फिर सिकंदराबाद में एकाध महीने चलतीं। तमिल फिल्में मुश्किल से एक हफ्ता चलतीं। मैं केवल दो ऐसी फिल्मों के नाम जानता हूं, जो दो या तीन हफ्ते चली हैं। पहली फिल्म थी 'मंगम्मा शपथम्' और दूसरी 'श्रीवल्ली'। मंगम्मा में वसुंधरा हीरोइन थी और 'वल्ली' में कुमारी रुक्मिणी। बुजुर्ग लोग भी बेशर्मी के साथ इन दोनों के बारे में खुलकर चर्चा करते। टेंट सिनेमा हाऊस में केवल तमिल फिल्में लगतीं। पता नहीं किसके भरोसे सिकंदराबाद में वे तंबू तानते और छः महीने में साठ-सत्तर तमिल फिल्में दिखाते। अक्सर सरकारी अधिकारीगण सपरिवार आधे घंटे देर से पधारते। दो टिकट ही बिकते, बाकी सब मुफ्ती। उनके लिए

शो देर में शुरू होता । लिहाजा अगले शो में रील की कटौती होती । हम पहले शो में जाते या दूसरे में, लौटना तो हमें पैदल ही पड़ता था । लौटने के लिए कोई सुविधा नहीं थी । लिहाजा हम सारी पलटन के साथ बारातियों की तरह तीन मील पैदल चलकर लौटते । रास्ते भर के कुत्तों को हम चौंकाते, वे भौंकते और पड़ोस वालों की नींद हराम करते । रील अक्सर बीच में कटती । एक बार तो रील कटी, सारा फ्रेम ही उलट गया और आग लग गयी । हम सब भागकर निकले । आधे घंटे की आपाधापी के बाद दोबारा फिल्म शुरू हुई । हम अब ऊपर के क्लास में बैठ गये, और शेष फिल्म देखने लगे । उस फिल्म का नाम शायद 'सुभद्रा' था । दस लाख में बनी थी वह फिल्म । लड़ाई के दिनों में फिल्मों की लंबाई कम कर दी गयी थी । लिहाजा हम लोग फिल्म का छोटा-सा हिस्सा ही देख पाये थे ।

आज भी सोचता हूं तो आश्चर्य होता है, कि कैसे हम अकेले देर रात घर लौटते थे, और इत्तिफाक था कि हमें कभी कुछ नहीं हुआ । बस मेरी दादी अकेली पहले निकलती । उससे एक फर्लांग की दूरी पर मैं और पिताजी । हमारे पीछे बाकी बहनें और छोटा भाई । सबसे पीछे मां । सीधी सड़क होती तो हम एक दूसरे की दृष्टि में बने रहते । पर सिकंदराबाद में हर पचास गज की दूरी के बाद मोड़ आते हैं । एक बार ब्रिटिश प्रतिनिधि की सलाह पर एक सीधी किंग्सवे बनाने की योजना भी थी । पर जब सड़क बनकर तैयार हुई डेढ़ मील की सड़क में पूरे ग्यारह मोड़ थे । हर मोड़ पर मकान भी बन गये । पूरे दस हजार के प्लाट बिके ।

अक्सर लोग सड़क से न जाकर पगडंडियों और गलियों से निकलते । पर गलियों से घर नजदीक तो नहीं पड़ता । यह सिर्फ भ्रम था । हम भी कभी-कभी गलियों में होकर यात्रा पर निकलते ।

कोई भी गली आती तो मैं पिताजी से कहता, 'पिताजी, यह गली बहुत लंबी है ।'

'ठीक है बेटे इसे कटवा देते हैं ।' पिताजी उत्तर देते ।

अगली गली आती, और मैं फिर कहता, 'पिताजी यह गली भी लंबी है ।'

'ठीक है बेटे, अब इसे भी कटवा देते हैं ।'

इसी तरह हम एक-एक करके सारी गलियां पार करते । जब हम गलियों की लंबाई के बारे में बातें नहीं करते थे, तब वे अक्सर मेरे भाई-बहनों और मां की चाल पर टिप्पणी करते और बार-बार कहते, 'नालायक हैं सब ! बेवकूफ !' मुझे कुछ नहीं सूझता पर पिताजी जिस तर्ज पर ये बातें कहते, साफ लगता उन्हें मेरे अनुमोदन की आवश्यकता नहीं । लिहाजा, मैं चुप लगा जाता । रजाकार का आतंक भी बना रहा, पर हम लोगों की रथ-यात्रा बदस्तूर चलती रही । मेरे पिटने के दो दिन पहले भी हम लोग इसी तरह निकले थे । पर तमिल फिल्म देखने नहीं । हम तेलुगु फिल्म

'कोल्ल भामा' देखने गये थे। अंजली देवी पहली बार नर्तकी के रूप में आयी थी। वह पहले आंध्र में और फिर तमिलनाडू में आगे चलकर काफी मशहूर हुई।

'कोल्ल भामा' छ: महीने तक 'पैरामाउंट' सिनेमाघर में चलती रही। यह पक्का सिनेमाघर था। हम टिकट लेकर कम ही देखते। जान-पहचान हो या न हो, पिताजी हम सबको बरामदे में खड़ा करते और खुद मैनेजर के कमरे में आधा घंटा बातें करते। मैनेजर पहले तो हिचकता फिर धीमे-धीमे उसकी टोन बदल जाती और खुद बाहर निकलता और हम सबको ऊपर के क्लास में बिठा जाता। कई बार जगह के न होने पर भी चार पांच कुर्सियां डलवाता और हमारे बैठने का इंतजाम हो ही जाता। इस पूरी भूमिका की वजह से होता यह था कि हम कोई भी फिल्म शुरू से नहीं देख पाते थे।

रेलवे की नौकरी के कारण बात-बात में'पास' लेकर चलने की आदत पड़ गयी थी। रेल में हम टिकट कभी नहीं लेते थे। लेना होता तो पी. टी ओ. की मदद से भाड़े का एक तिहाई हिस्सा ही देते।'पास' के कारण हम हर साल हजारों मील का सफर फिजूल में करते। पास में, गंतव्य स्थान के अतिरिक्त, रूट के लिए भी एक कॉलम बना रहता। हम कई स्थानों पर यात्रा तोड़कर रुक सकते थे। पिताजी जब भी पास लेते, तो वह कॉलम छोटा पड़ जाता, आस-पास भी वे स्थानों के नाम लिखते। दो महीने में बीस जगह घूमते और थककर घर लौटते। मुझे याद है, इसी दौरान एक बार चोर ताला तोड़कर घर साफ कर गया था।

मुश्किल तो सिर्फ भैंस की होती थी। इससे पहले कि हम यात्रा पर निकलें, महीना भर पहले से ही माथा फोड़ने लगते, कि भैंस कहां छोड़ी जाये। किसी दूध बेचने वाले ग्वाले के पास छोड़ा जाये तो वह उसको भूखा ही मार देगा। एक भैंस हमारी इसी तरह सिधार चुकी थी। कुछ ऐसे लोग जो दूध के लिए भैंस पाल लेते थे हमारी भैंस रखने को तैयार नहीं होते। क्योंकि उनका काम इससे बढ़ जाता था। शहर के पास किसी गांव में छोड़ना पड़ता था, वह भी रुपया देकर। अक्सर वह व्यक्ति हमारी ट्रेन छूटने के एक घंटा पहले तक गायब रहता। या फिर एक सप्ताह पहले ही भैंस ले जाता। एक बार इसी चक्कर में हमारी ट्रेन छूट चुकी थी। अगली बार खुद पिताजी और मैं भैंस हांकते हुए पड़ोस के गांव तक गये थे। पिताजी के हाथ में छड़ी रहती और मेरे हाथ में छतरी और लाठी। रास्ते भर, 'कहो बाबू', 'कहिये मास्टर', 'अरे उस्ताद', सारे संबोधन बरकरार रहते। भैंस अपनी इच्छा से ऊंची-नीची चलती। हम जब गांव पहुंचकर किसी मल्लैया, या सायना को पकड़कर भैंस उसे सौंपते, आधा दिन बीत चुका होता। लौटते भी हम ट्रेन से ही थे, पास दिखाकर।

रेलवे का पास सिनेमा घर वाले तो मान लेते थे पर निजाम के कस्टम वाले आनाकानी

करते । सिकंदराबाद स्टेशन के बाहर एक पुरानी-सी बिल्डिंग में चुंगी-घर बना हुआ था । महीनों की यात्रा और उसकी थकान उस दसेक मिनट के सामने जैसे छोटी लगती । हम छः-सात लोग सातेक बोरिया-बिस्तर-ट्रंक समेत वहां आकर खड़े हो जाते । निजाम के राज्य में भी महिला अधिकारी ही अधिक थीं । कितनी ही बार उस महिला ने हमारा सामान चैक किया है । उसका निरीक्षण अक्सर सख्त होता था। वह जो भी सामान निकालती, हम यही कहते कि यह निजाम की रियासत में लिया गया है । मुझे याद है कि उस महिला की शक्ल जनाब जिन्ना की बहन फातिमा से मिलती थी ।

वह पूरे अविश्वास के साथ हमें बार-बार घूरती, बड़बड़ाती, फिर एक दर्जन केला या आम निकालकर रख लेती और हमें जाने की अनुमति देती । उस चुंगी घर में किसी को चुंगी जमा करते मैंने कभी नहीं देखा । वह महिला सुबह, शाम और सूरज की तरह उस पद पर अनंत काल तक बनी रही । हिंदोस्तान आजाद हुआ, हिंदोस्तान और निजाम के बीच तनाव बना रहा, फिर हिंदोस्तानी फौज ने हैदराबाद को हथिया लिया। इन सारी घटनाओं के बाद भी वह महिला निर्विकार फलाहार पर जीवित रही।

अक्सर दबंग दिखने वाले पिताजी अगर कहीं दीन हीन नजर आते तो या तो चुंगी घर में या निजाम रियासत के किसी कार्यालय में । वहां उर्दू ही चलती । कोई भी अधिकारी नियमित रूप से दफ्तर नहीं आता था । वे अक्सर अपने कार्यालय को 'मुगल दरबार' कहते । उसके अर्थ चाहे जितने हों, पहला तो यही होता कि कोई काम वहां वक्त पर नहीं होता । निजाम सरकार के कार्यालयों में अस्सी प्रतिशत कर्मचारी मुसलमान ही होते । बाकी बीस प्रतिशत मुल्की होते । यानी हैदराबाद रियासत के अधिकृत लोग । रेलवे में मुसलमान कम थे । वहां अंग्रेजी चलती । काम करने वाले हिंदोस्तान के विभिन्न प्रांतों से आने वाले लोग ही थे ।

उन दिनों रेलवे में जितने अधिक अन्य प्रांतों के निवासी नियुक्त हुए थे, फिर कभी नहीं हुए । न ही किसी अन्य विभाग में इतने प्रवासी थे । रेलवे के लोग निजाम सरकार के कार्यालयों को हेय दृष्टि से देखते । पर वहां रहते हुए, उन कार्यालयों से वास्ता भी पड़ता ही रहता था । तब आवेदन पत्र लिखने के लिए उर्दू जानने वालों के पांव पड़ना पड़ता था । अंक तक उर्दू में लिखे रहते । निजाम रियासत का टिकट लगाकर ग्यारह बजे जाते तो दो बजे तक वहीं बैठे रहते । न इनकी बात उनके पल्ले पड़ती, न उनकी बात इनके । लिहाजा वे असफल, निराश लौटते । रेलवे में काम करने वाले को विदेशी लुटेरा माना जाता था । मेरे पिताजी को इस तरह के कटु अनुभव कई हुए होंगे । शेर भी सामने आ जाये, पिताजी तुरंत कहेंगे, 'मैं रेलवे का कर्मचारी हूं ।' मुगल दरबार के लोग इनके साथ नम्रता से भला क्यों पेश आते ?

6

ड्रीमलैंड सिनेमाघर के आगे काफी भीड़ थी। टिकट बंटने के पहले तक भीड़ चुपचाप लाइन में खड़ी थी, पर टिकट घर के खुलते ही, भीड़ आक्रामक हो गयी और पूरी भीड़ खिड़की के आस-पास धक्का-मुक्की करने लगी। मॉरिस होता तो भीड़ को चीरकर आगे पहुंच जाता और हाथ आगे बढ़ाकर टिकट ले लेता। चंद्रशेखर बगैर टिकट लिए ही हॉल में घुस गया। पता नहीं क्यों, किसी ने उसे नहीं रोका। अकेला वही था हॉल में। फिल्म जैसे केवल उसके लिए शुरू हो गयी। फिल्म थी, 'बेथिंग ब्यूटी'। पौने छ: फुट ऊंची एस्थर विलियम्स तैराकी के बाद अच्छे भले कपड़े पहनकर पर्दे से उतरी और चंद्रशेखर के पास आकर खड़ी हो गयी। उसके ऊपर के दांत आकार में कुछ बड़े थे। उसने प्यार से ही कुछ कहा होगा।

'तुम क्या कह रही हो ?' चंद्रशेखर ने पूछा।

'मैं तुम्हें अच्छी लगती हूं ?' उसने इस बार साफ पूछा।

चंद्रशेखर तपाक से अंग्रेजी में जवाब नहीं दे पाया।

उसने मुस्कराते हुए उसका हाथ पकड़ लिया और उसे लेकर तालाब में उतर गयी। चंद्रशेखर के हाथ-पांव फूल गये।

चंद्रशेखर जब चौंककर जागा, तो उसके हाथ-पांव तब भी फूल रहे थे। उसे अपने स्वप्न पर शरम भी आयी, साथ ही डर भी लगा। अक्सर इधर ऊटपटांग सपने आने लगे हैं। ये कभी खत्म नहीं होंगे क्या ? किससे जाकर कहेगा वह ?

चंद्रशेखर उठ खड़ा हुआ। अंधेरे में घर का भीतरी हिस्सा धुंधला लगा। ऊपर तारे होने की वजह से ही छत की उपस्थिति महसूस की जा सकती थी। वरना गहरा अंधकार था।

चंद्रशेखर घर के बाहर आ गया। घर की ही तरह, दरवाजे भी काफी ऊंचे थे। ऊपर की सिटकनी कम से कम दो फुट की तो होगी ही। उसे खोलने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता था। पर उसे बाहर जाने की आवश्यकता महसूस हुई।

हलकी चांदनी में आभास मात्र होता था। कोहरा भी छाया हुआ था। लांसर बैरक्स और उसके आस-पास के इलाके में नीरवता छायी थी। दूर कहीं कोई मुसलमान, ठेठ मुस्लिम तर्ज पर कोई उर्दू का गीत गा रहा था। कोई मुस्लिम ढाबा होगा। ग्रामोफोन पर गाने बज रहे होंगे। जोहरा बेगम होगी या फिर अमीरबाई कर्नाटकी।

चंद्रशेखर का बदन जगह-जगह दुख रहा था। जांघ में तीन बार गेंद लगी थी। पैड भी पहना था। पर उससे क्या होता है। थोड़ी जगह तो छूट ही जाती है। बस वहीं चोट लगी है। फिर ऊपर से ये रजाकार। क्या सचमुच वे रजाकार थे ? कंधे पर मारा था उन्होंने। इतने पास आकर मारा था उन्होंने, पर चोट उसे कम ही लगी। दर्द जरूर कुछ अधिक है। फिर पांव तो दुख ही रहे हैं। तीन-चार घंटे तो वह साइकिल चलाता रहा है, तीन मील पैदल चला है। बारह रुपये में सिलवाये गये जूते, क्रिकेट के ही लायक हैं। उस जूते के साथ आधा मील भी नहीं चला जा सकता। इतना तो भारी है वह। आज वह चला भी बहुत है। पेट के निचले भाग में भी तो दर्द है। शायद भैंस की सींग लगी हो।

मन का सारा तनाव अब खत्म हो गया और ध्यान शरीर की पीड़ा पर केंद्रित हो गया। चंद्रशेखर जांघ को सहलाने लगा। पर ध्यान बहुत देर तक केंद्रित नहीं रह सका। फिर वही सपना। . . . नासिर अली खान, साइकिल स्टैंड वाला बूढ़ा, टैंक बंड की उलटी हवा, नरसिंह राव, शरणार्थी, पुलिस अधिकारी के घर की वह मोटी महिला।

काफी देर तक बाहर खड़ा रहा था वह। अब, वस्तुएं पहचान मे आने लगीं। सामने वह पीपल का पेड़। पीछे बैरक्स की चारदीवारी। उसके बाद सड़क। इस तरफ एक के साथ एक लगे हुए घर। मैदान, ढेर सारी शाखाओं वाला बरगद, सड़कें, बत्तियां, वगैरह ! इधर कुछ बंगले, और उधर कुछ। कहीं दूर कोई उर्दू गीत। वही बार-बार सुना जाने वाला गीत। कासिम के घर यह गीत कितनी बार रेडियो पर बजता है। इस समय प्यारी बेगम सो रही होगी।

पड़ोस में पिछले कुछ दिनों से, प्यारी बेगम के परिवार के अलावा तीन चार नये परिवारों की वृद्धि हो गयी थी। वे छुट्टियां मनाने वाले लोग कतई नहीं थे। बस इतना मालूम था कि वे शोलापुर से आये हैं। कासिम का घर न होता तो ये भी स्टेशन रोड के किनारे झोपड़ी तानकर पड़े रहते। ये भी मुसलमान ही थे। नासिर अली खान भी तो मुसलमान है। पर कितना फर्क है इनमें।

चंद्रशेखर को लगा कि लौटते वक्त आज नासिर से ठीक से विदा भी नहीं ले पाया। अब वह कोई बार-बार तो नहीं बुलवायेगा। उसे अपने-आप जाना होगा।

पर आज जिस तरह से अपनी फज़ीहत करवायी है, वह उधर का रुख करे भी क्यों ?

चंद्रशेखर को लगा, जैसे वह रोना चाहता है, पर नहीं रो पाया। कुछ दिनों से यही हो रहा है। वह जो चाहता है, कह नहीं पाता। पुराने दोस्त धीरे-धीरे अलग होते जा रहे हैं। हालांकि डेरिंस और मॉरिस उसके घर के पास ही रहते हैं, पर महीनों गुज़र जाते हैं और वह उन्हें देख तक नहीं पाता। नये दोस्तों के साथ बस तीन-चार मिनट तक सब ठीक चलता है, फिर वार्तालाप के सूत्र जैसे खोजने पड़ते हैं।

चंद्रशेखर ने दरवाजा बाहर से भिड़ा दिया। कंपाउंड का छोटा वाला गेट भी उसने बंद कर दिया। सामने पीपल के पेड़ तक चल दिया। पेड़ से गिरे सूखे पत्तों की चरमराहट उसे सुखद लगी। कितनी बार उसने उन पत्तों को पूरी निश्चिंतता के साथ चुना है। पंडितजी को कितनी बार पोटली भर सूखे पत्ते दिये हैं। अब ये जो नये ज्योतिषी आये हैं वे और ज्योतिषियों की तरह, उसके सुखद-संपन्न भविष्य की बात नहीं करते। उसकी ही नहीं, घर में किसी की जन्मपत्री पकड़ा दो, वे होंठ सिकोड़ते, कुछ हिचकते और भविष्यवाणी करते। मां ने, उनका नाम सनीचर रख दिया है। अंधेरे में कोई उन्हें देख तक नहीं सकता। सनीचर का रंग काला होता है क्या ! उसने अपने-आप से पूछा। उसकी तो साढ़े साती चल रही है। साढ़े साती का क्या मतलब ? साढ़े सात साल तक वे मेरे पास रहेंगे क्या ? इसका मतलब इस वक्त भी मेरे आस-पास होंगे। कहां हैं ? उसने आस-पास देखा।

चंद्रशेखर ने इधर-उधर देखा। घुप्प अंधेरे में उसे अपना और पड़ोस का घर, सोये हुए कुंभकर्ण सा-लगा। पीछे के मकान तो इधर से नजर नहीं आते। बस पीछे का चर्च जरूर तन कर खड़ा है। आज शाम भी तो वह भैंस को ढूंढ़ता हुआ वहां हो आया है।

दायीं ओर का ऊबड़-खाबड़ मैदान। बस तीन या चार इमारतें। ईसाई कब्रिस्तान। कितने ही अंग्रेज भूत-प्रेत वहां चल फिर रहे होंगे। दिन के वक्त भी वहां जाना खतरे से खाली नहीं। पर इस समय वह नज़र कैसे आ रही है। कहीं सनीचर का साथ होना, तो इसका कारण नहीं।

इस ओर का यह बरगद। दूर से उसका पूरा आकार नजर आता है। इतना बड़ा पेड़। पेड़ न हो, कोई पहाड़ी हो जैसे। उसके वे लाल-लाल फल इस समय नहीं दीखते। पता नहीं, वे पक कर नीचे गिरते हैं, या कौए चोंच मारकर उन्हें गिरा देते हैं। कुछ भी हो, इस समय तो वह पेड़, पूरा चित्र लगा रहा है। काला भुजंग-सा विशाल चित्र। ज़रा-सी भी हलचल नहीं। पेड़ आक्सीजन छोड़ रहा है क्या ?

अचानक एक सरसराहट। एक सांप रेंगता हुआ उसके आगे निकल गया। उसकी आंखें उसके पीछे दूर तक चली गयीं। दूर जाकर वह उसकी आंखों से ओझल भी हो गया।

सांप! जब से उसे इस तरह के सपने आने लगे हैं, उसे सांप भी अक्सर दीखने लगे हैं। इस घर में आये उसे पूरे आठ साल होने को हैं। पर आज तक सांप तो क्या उसकी छाया तक नहीं दिखी। पर पिछले तीन महीनों में तीन सांप देख चुका है वह। वह भी नाग! नाग! नागरत्नम्।

सहसा उसे नागरत्नम् याद हो आयी। उसे भी तो बार-बार देखने को जी चाहता है। और देखता है, तो दुख होता है। अब इस कसक को क्या कहे वह। उससे निस्संदेह बड़ी है वह! अपने से बड़ों के बारे में ऐसा सोचने लगा है वह। क्यों? इस उम्र में क्या ऐसा ही होता है?

जितनी लड़कियों को वह लगाव से देखता रहा है, उनमें केवल नागरत्नम् ही ऐसी है, जिसने उसकी लोलुप दृष्टि का प्रत्युत्तर दिया है। ऐसा क्यों होता है कि उसे हर बार उसकी आंखों की हंसी में अपनी उम्र का उपहास ही दीखता है। उसके बारे में कितनी बातें सुनी हैं उसने। पर रंगरामानुजम् ने उसका इतिहास ही सुना डाला है। यह नहीं कि उसे नागरत्नम् से कोई द्वेष या घृणा है। उसने रंगरामानुजम् पर कतई ध्यान नहीं दिया। इसके और भी कारण हो सकते हैं। हो सकता है कि एक कारण यह भी हो कि अक्सर रंगरामानुजम् उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए कई बेवकूफियां करता फिरता था। पर इस तरह की बेवकूफी तो और लड़के भी करते रहते हैं। रंगरामानुजम् तो नागरत्नम् पर निहाल था। सिकंदराबाद की आधी जनता उसके पीछे पागल थी। रंगरामानुजम् हर वक्त उसी की बातें करता। हालांकि, वह उसे जानता तक नहीं था। वैसे किसी के बारे में तभी बातें की जा सकती हैं, जब उसे कोई ठीक से जानता हो। अन्यथा सिवाय बुराइयों के और न तो कोई बात कही जा सकती है, न सुनी जा सकती है। नागरत्नम् के बारे में जो कुछ भी गलत-सलत रंगरामानुजम् ने सुना था, उसी को बार-बार दोहराता। शायद यही वजह थी कि उसके बारे में कई निष्कर्ष उसने खुद-बखुद ले लिये थे। पता नहीं, आजकल वह कहां है। पता तक ठीक से नहीं दिया। अरे, पहुंचकर एक खत ही डाल देता।

चंद्रशेखर को सहसा लगा, जैसे उसने कुछ खो दिया है। उसे थकान-सी महसूस हुई। क्या पता, नागरत्नम् की वजह से ही रंगरामानुजम् उसके प्रति उदार रहा हो। पर यह बात भी कैसे हो सकती है? कितनी बार वे दोनों शहर की गली-गली छानते रहे हैं। कितनी ही बातें उन्होंने बांटी हैं। क्रिकेट के खेल का चस्का भी उसी से तो लगा था। जब तक रंगरामानुजम् रहा, खेलना उसे ठीक से नहीं आया। बल्ला

उठाया नहीं कि बस आउट हो जाता। गेंद फेंकता, तो वह भी जैसे मर्जी के अनुसार दिशा बदलती। खैर यह सब तो फिर भी गनीमत थी। पर फील्डिंग करता तो, कोई भी कैच की आशा तक नहीं करता। उसकी प्रतिभा से लोग परिचित हो गये थे। पर जब से रंगरामानुजम् गया है, चंद्रशेखर को जाने क्या हो गया है। उसके रहते, जो चीजें वह सीख नहीं सका, उसके जाते ही कहां से पल्ले पड़ने लगी हैं। अब गेंद भी पहचानने लगा है। उसे खेलने की इच्छा होती है। उसके साथ लड़ने की, आक्रामक होने की इच्छा होती है। लांसर बैरक्स में कृष्णस्वामी का भाई गोकू, पहले तो उसके बल्ला उठाते ही फिस्स से हंस देता। अब वह भी चुप हो गया है। चंद्रशेखर के कप्तान बनने में किसी को आपत्ति नहीं थी। हो सकता है, पहले कभी रही हो। पर पूरे दल में उससे अधिक विशेषता किसी और में कहां थी। इन तीन महीनों में वह सात मैच खेल चुका है, पांच उसने जीते हैं और दो अनिर्णीत। चंद्रशेखर ने अकेले ही तीन सौ अठारह रन बनाये थे। सिर्फ एक बार तीस से भी कम रनों में आउट हुआ था। बाकी सभी में चालीस-पचास रन बना लिये थे। एक बार सतहत्तर रन बनाये थे। काश रंगरामानुजम् यह सब देख पाता। अगर वह होता, तो कप्तान वही बनता। पर उसकी कप्तानी में इतने रन बनाते खुशी भी तो कितनी होती। उसका परिवार सबसे पहले सिकंदराबाद छोड़ गया। हो सकता है, उनका तबादला ही हो गया हो। कुछ भी हो, वह चला गया।

उर्दू गीत भी बंद हो गया। चारों ओर घोर चुप्पी थी। झींगुर की आवाज तक बंद थी।

चंद्रशेखर ने चारों ओर देखा। उसे लगा सहसा यह सारा क्षेत्र फैल गया है। घर कितनी दूर बना लगता है। पर जैसे सब अपनी-अपनी जगह पर ठीक थे। उसे लगा, जैसे पूरा संसार उसके पैरों के नीचे से निकल-कर आस-पास प्रवाहित हो रहा है। वस्तुएं जैसे जड़ और स्थिर नहीं। किसी गुब्बारे में बने चित्र की तरह हैं। गुब्बारे के फूलने पर सहसा बड़ी दीखती हैं, उसकी हवा निकलते ही छोटी लगती हैं। हवा की सनसनाहट जैसे भयंकर रूप लेती जा रही थी। उसे लगा जैसे वह भी हवा के साथ धूल के बगूले-सा उठता हुआ आसमान जितना ऊंचा हो गया है। वह सितारों को भी छू सकता है।

वह न चाहते हुए भी पहले की तरह हो गया। वही घर, वही पेड़, वही चर्च, वही कब्रिस्तान। सब कुछ वही, वैसे का वैसा। पूरा परिवेश किसी गांव का-सा लग रहा था। गांव का दृश्य भी तो ऐसा ही होता है। वही तीन-चार इमारतें इधर-उधर। खेत मैदान, नाला और दूर पहाड़ियां। कहीं, एक कुत्ता या इधर-उधर जुगाली करती गाय। मनुष्य नाम के जंतु का कोई अता-पता नहीं। अगर लांसर बैरक्स के साथ

उसका भी चित्र इस परिवेश में शामिल कर लिया जाये, तो फिर वह गांव का परिवेश नहीं रहेगा।

चंद्रशेखर बरगद के पेड़ की ओर चल दिया। अक्सर घर पर लोगों के रहते हुए भी वह अंधेरे में जाते डरता। पर आज। इतनी रात गये अकेले निर्जन में घूमते उसे तनिक भी भय नहीं लगा। सचमुच भय नहीं रहा अब। हो सकता है, भय से ऊपर कोई बात अब उस पर हावी हो गयी है, और उसे बचा रही हो। भय भी कैसा ? जान का ही न। अपनी जान के बारे में पहले जान तो ले वह, फिर उसे गंवाने के बारे में सोचेगा। पर भय तो उसे है। छोटी-मोटी चीज का नहीं, किसी शाश्वत का। कभी-कभी तो वह सोचता है कि इस भय का और लड़कियों के प्रति उसके मोह का कोई गहरा संबंध है। या उसके भीतर कोई बुरी आत्मा घुस गयी है। वही उसे डराती है। सपने दिखाती है। अब इस बीच रात पेड़ों के बीच घुमाती है। पीपल की बात तो उसे याद नहीं, बरगद में कितने विचार छिपे हैं। उसके कई खेल के घंटों का मूक साक्षी रहा है। उस पर चढ़कर कितनी बार समय को हाथ से धीमे-धीमे फिसलते देखा है उसने। एक तरह से वह जैसे घर हो। लेकिन घर में रहते हुए बोलना जैसे जरूरी हो जाता है। कुछ न कुछ करते रहने से ही संबंध की उपस्थिति का आभास होता है। बरगद के साथ ऐसी शर्तें नहीं हैं। पर क्या सिर्फ इसी एक कारण से बरगद महान हो जायेगा ? उसे क्या जो मैं बरबाद हो जाऊं या मटियामेट हो जाऊं।

सहसा फुलझड़ी-सी चमक कर जलने वाली सारी हलचल समाप्त हो गयी। बरगद के नीचे कोई खड़ा था। चंद्रशेखर कुछ देर सोचता रहा। वह आकृति घुटने के बल बैठ कर दोनों हाथों से चेहरे को ढंके हुए थी।

चंद्रशेखर की सारी हलचल जैसे खत्म हो गयी। वह बरगद की ओर चल दिया। उस लड़की ने उसकी ओर नहीं देखा, शायद। चंद्रशेखर चुपचाप वहां पहुंचा।

'जूली !'

वह जैसे चौंक गयी। उसे पहचान कर बोली, 'चंदू, तू ?'

'व्हाट यू डूयिंग हीयर मैन ?' उसने पूछा। नाक सुड़ककर वह उसकी ओर देखने लगी। वह जूली नहीं, लारा थी। चंद्रशेखर को आश्चर्य हुआ। जूली के साथ वह जितना आत्मीय था, लारा के साथ उतना कतई नहीं था। इतना जरूर कह सकता था कि वह इस तरह एक जगह बैठकर रोने वाली नहीं। पर आज वह ठीक अपनी बड़ी बहन की तरह रो रही है। शक्ल-सूरत भी आज बहन की-सी लग रही थी।

'क्या हुआ ?'

'कुछ भी नहीं।' वह जैसे संभल गयी।

'कोई मदद करूं ? बोलो ना।'

'बस एक बात, तू किसी से मत बताना कि तूने मुझे रात यहां देखा है।'

'कोई और भी यहां है क्या ?'

लारा ने नकारात्मक उत्तर दिया। फिर घर की ओर चल दी। चंद्रशेखर ने उसे धीरे-से आवाज दी 'लारा !' उसका हाथ धीरे-से पकड़ लिया। उसने पलटकर उसे देखा। दोनों के चेहरे साफ नजर नहीं आ रहे थे।

लारा ने फिर हिचकी ली। 'चंदू !' वह उससे लिपटकर फिर रो दी। चंद्रशेखर ने उसे कस लिया और पीठ सहलाने लगा। ऐसा ही अनुभव, बड़ी बहन के साथ भी हुआ है। जूली के रोने का कारण साफ था। वह गोरा सिपाही उससे बोले बगैर ही सहसा गायब हो गया। उसने कई दिनों तक उसकी खबर की प्रतीक्षा की। फिर धीरे-धीरे जैसे ही मोह भंग होता चला गया, वह रो दिया करती। वह तो बड़ी थी। क्या लारा भी इन चक्करों में फंस गयी है ? जहां तक उसे याद है, लारा में लड़कीपना कभी नहीं रहा। अब इस भयंकर रात में बरगद के नीचे रो रही है, वह भी अकेली।

लारा ने रोना छोड़कर चंद्रशेखर के चेहरे पर आंखें गड़ायीं। अंधेरे में उसकी आंखें तो पहचान में आ रहीं थीं, पर भाव वह जान नहीं पाया था। चंद्रशेखर ने उसके भीगे गाल पोंछे।

लारा ने कुछ देर उसे घूरा। फिर अपने को छुड़ा लिया और अपने घर की ओर चल दी। चंद्रशेखर ने अपने को आशवस्त किया। लारा के सस्ते पाउडर की गंध अब भी मौजूद थी।

लारा के चले जाने के बाद, बरगद के नीचे उसे अच्छा नहीं लगा। पहली बार शायद उसे भय लग रहा था। लांसर बैरक्स में रहने वालों को दुनिया-जहान से कुछ लेना-देना नहीं। वरना, आधी रात कोई क्रिकेट की याद में, या फिर कोई अपने प्रेमी की याद में बरगद के पास टहलने या रोने कहां आते ? कितनी अजीब बात है कि दोनों एक ही वक्त वहां आये। किसी ने अगर देख भी लिया होता तो जाने क्या-क्या सोच जाता। लगभग पूरा शहर इस समय नींद में है। कई लोग, उसकी तरह शायद सोने की कोशिश में भी होंगे। चारों तरफ भय, आतंक। शहर खाली हो रहा है। लोग अपने घरों की औरतों को, बहू-बेटियों को हैदराबाद के बाहर भेज रहे हैं। पर कितने दिनों तक भेज सकेंगे ? अब उसके अपने घर से ही किस-किस को भेजेंगे ? फिर भेजेंगे भी कहाँ ? और फिर बाकी लोगों को रजाकार मार डालें

तो ? और फिर ये लोग कब तक छुरा-चाकू लिये फिरते रहेंगे। सिकंदराबाद कुछ दिनों में शरणार्थियों का कैंप बन जायेगा ?

आज रात अचानक नींद खुलने के बाद ही, वह कुछ साधारण स्थिति में लौट रहा है। तनाव अभी भी बरकरार है। पता नहीं क्यों लगता है कोई उसे फिर से डंडे से मारे, और उसका तनाव खुद-बखुद झर जायेगा। उसकी आंखें झपकने लगीं।

7

कुछ दिनों से जाने क्यों सिर्फ सारी रात बारिश होती रही थी। पानी का बरसना भी सुबह उठकर ही पता लगता है। यहां की वर्षा ही ऐसी है। रुक-रुक कर बारिश होती है। कल सुबह जब वह जूते पहनने लगा था, तभी पिछली रात की बारिश का अंदाजा लगा पाया था। कल ही उसने निर्णय लिया था कि अब से आगे रात बरामदे के पास जूते नहीं छोड़ेगा। कम से कम रात को सोने से पहले जूतों को किसी सुरक्षित स्थान पर रख लेना था। नहीं किया। आज फिर जूते भीगकर भारी हो गये हैं।

चंद्रशेखर ने पहले जूते पहने, फिर पैंट पहनी। कासिम, वेंकट राव, जाफर अली और मन्नास भी जूते इसी तरह पहना करते। ऐसा करने से पैंट के मुसने का डर नहीं रहता। पर जितनी भी कोशिश की जाये, क्लिप लगाकर साइकिल चलाते, घुटनों के पास पैंट फूल जरूर जाती है। फिर भद्दी लगने लगती है। आज वह साइकिल से नहीं जायेगा। पिछले हफ्ते तीन बार तंग कर चुकी है यह। कल ही मां और पिताजी ने भी कहा था कि जब तक शहर सामान्य नहीं हो जाता, तब तक वह साइकिल नहीं छुयेगा। उसे भी बात सही ही लगती है।

चंद्रशेखर किताबें लेकर चल दिया। धूप तीखी थी। चलो, जूते तो सूख ही जायेंगे। बारहों घरों के बरामदे खाली थे। यह तो मृगतृष्णा है। देखते ही देखते स्कूल जाने वाले, दफ्तर जाने वाले, उन्हें विदा करने वाले आ जायेंगे। तब वह आराम से नहीं जा सकता। उन्हें देखकर मुस्कुराना होगा। वे जो भी दो-चार सवाल करेंगे उन्हें झेलकर उनका जवाब देना होगा। उनकी प्रतिक्रिया भी प्रतिकूल होती है।

चंद्रशेखर सिर पर पैर रखकर चलने लगा। मन्नास के घर से तेज आवाजें आ रही थीं। डेरिंस और उसकी मां की तेज आवाज। हाय, लारा बाहर आ गयी। चंद्रशेखर ने चेहरे को तटस्थ कर लिया और तेज चलने लगा। शीघ्र ही वह सड़क

तक पहुंच गया। सड़क से चलता हुआ रेलवे स्टेशन तक पहुंचा। वहां से कालेज के लिए बस मिलती है।

सिकंदराबाद का रेलवे स्टेशन यहां से साफ नजर आता है। इमारत के सामने का सारा आवागमन खिलौने का-सा लगा। इमारत के आगे मैदान को रोककर बड़े-बड़े प्रवेश-द्वार बनाये गये हैं। एक किनारे, सात नंबर की प्लेट लटक रही थी। वहां का इंजन सुबह निकलता तो शायद रात ही वापस आता। पूरे वातावरण में डीजल की गंध फैली थी। चंद्रशेखर बस तक गया। बस के चलते ही फुट बोर्ड पर लटकने के लिए पंद्रह-बीस लोग तैयार खड़े थे। बस के भीतर उसने नजर दौड़ायी और हताश हो गया। नागरत्लम् भीतर कहीं नहीं थी।

बस ड्राइवर, कंडक्टर दोनों ही आ गये। बस लंबी सांस लेकर रेंगने लगी। चूंकि फुट बोर्ड पर करीब पंद्रह लोग लटके थे, बस एक ओर झुकी रही। हांसल और क्रेडला को इसी बस से जंगल में छोड़ दिया जाता तो डीजल के धुंए के सहारे रास्ता खोजते लौट आते।

बस मनोहर टाकीज़ के पास खड़ी हुई। सभी चढ़ने वाले परिचित ही थे। कुछ नये लोग उतर गये। बस रेंगकर क्लाक टावर के पास जाकर रुक गयी। मिनर्वा टाकीज़, रामगोपाल की मूर्ति, जेम्स स्ट्रीट पुलिस चौकी, रानी गंज। अब कम से कम एक मील तक नहीं रुकेगी। बस टैंक बंड के ऊपर रेंग रही थी।

चंद्रशेखर लटक रहा था, सो वह झील को नहीं देख पाया। पर आती हुई हवा को वह बराबर महसूस कर रहा था। हवा सभी को सहला रही थी। हर बार जब निज़ाम सल्तनत के वज़ीरे आज़म बदलते तो इस टैंक बंड की रूपरेखा भी बदलती। हैदराबाद आते ही उनकी नज़र सबसे पहले इसी पर पड़ती। सभी उसकी सुंदरता को और बढ़ाना चाहते। दीवार तोड़कर लोहे के तार। एकाध जगह बाल्कनी। कभी ऊंची, तो कभी फुटपाथ के बराबर की। चलो फिर से तोड़ो। मिर्ज़ा इस्माईल का हुक्म है। मिर्ज़ा इस्माईल हिंदुस्तान को सुंदर बनाने का ठेका ले चुके हैं। मैसूर सुंदर शहर है। हैदराबाद को भी सुंदर बनाना है, पर वजीर नहीं रहे। फिर सटारी नवाब। सटारी नवाब की मूंछें गाय के सींग-सी तनी थीं। कासिम रिज़वी के आदमियों ने एक हिस्सा तो उखाड़ ही दिया था। काफी दर्द हुआ होगा। अब तो लइक अली है, वजीर है। दिल्ली में माउंटबेटन, सरदार पटेल। हिंदुस्तान की आजादी। भोपाल, जूनागढ़, दिल्ली के लालकिले पर तिरंगा। डी.के. पट्टम्माल का 'अडुवोमे' गीत ! यहां 'ज्वाइन इंडियन यूनियन डे'। सुल्तान बाजार में बड़ी सुबह किसी ने हिन्दुस्तान का तिरंगा फहरा दिया। पुलिस वाले सहम गये हैं। क्या किया जाये ? रजाकार ! शरणार्थी ! लाल किले पर

चलेंगे। 'दिल्ली चलो।' नरसिंह राव ने खून से हस्ताक्षर करवाये हैं। हे भगवान, चलो हुसैन सागर तो पार हुआ। पांच मिनट में कॉलेज पहुंच जायेगा।

बस फतह मैदान आ गयी। चंद्रशेखर के साथ लगभग तीस लोग उतर गये। बस चल दी। निज़ाम कॉलेज के प्रिंसपल गेट से पास ही खड़े थे। उनके कमरे में वे भीम की तरह दृढ़ नज़र आते थे, पर यहां! वे कितने साधारण लग रहे थे। गेट के पास खड़े होकर वे आने वाले छात्रों को अंदर भेज रहे थे। उनके पास साइकिल स्टैंड वाला बूढ़ा खड़ा था। उसे दुअन्नी पकड़ा दो, तो वह बाहर भेज देगा। हैदराबाद की दुअन्नी इस मामले में काफी सुविधाजनक है। आधे इंच से भी कम वर्तुलाकार गिन्नी!

चंद्रशेखर गेट से काफी दूर खड़ा रहा। सड़क के नुक्कड़ पर लोगों का आना-जाना लगभग नहीं के बराबर था। बीच में एक बड़ा पीपल का पेड़। लौटती बस पकड़ने के लिए इसी पीपल के नीचे आना होगा। काफी चौड़ी पक्की सड़कों और पक्की इमारतों के बीच यह पेड़! किसी भी वज़ीरे आजम ने इस पेड़ को नहीं कटवाया। आज इस पेड़ के नीचे एक पुलिस इंसपेक्टर और दो पुलिस वाले खड़े हैं।

नौ पचपन पर कॉलेज की घंटी बजी। प्रिंसपल अंदर चले गये। बाहर चंद्रशेखर के अलावा सात-आठ लोग ही थे। इन सभी को पीपल के नीचे खड़ा पुलिस इंसपेक्टर घूर रहा था। आमने-सामने दो बसें आ खड़ी हुई। फिर भीड़ बढ़ गयी।

चंद्रशेखर को आश्चर्य हुआ। ये लोग अब तक कहां छिपे थे? पाजामा और सफेद कुरता पहने दो व्यक्ति फतह मैदान की चारदीवारी से कूद-कर सड़क पर आ गये। इससे पहले कि वे सड़क पार कर कॉलेज के गेट तक आते, दोनों ने गांधी टोपी पहन ली। वे लोग 'वंदे मातरम्' चिल्लाये।

उनकी चीख दस फुट से अधिक दूर क्या पहुंची होगी। पर पीपल के नीचे खड़ा इंसपेक्टर चौंक गया। गांधी टोपी वाले युवक, 'हिंदुस्तान जिंदाबाद, पुलिस जुल्म मुर्दाबाद।' के नारे लगाने लगे। अब उनकी आवाज में दम था।

पुलिस इंसपेक्टर ने पुलिस वालों को कुछ आदेश दिया और तीनों ने सड़क पार की। पर उस समय तीन-चार लोग एक के बाद एक मोटर साइकिल पर तेजी से भाग रहे थे। पुलिस वालों को रुकना पड़ा। इस बीच वे दोनों टोपी वाले फुटपाथ की भीड़ के पास पहुंच गये। 'वी वांट' वे चीखे। चंद्रशेखर और उसके साथियों ने नारा बुलंद किया, 'मर्जर'।

'वी वांट!'

'मर्जर!'

'पुलिस जुल्म!'

'मुर्दाबाद !'

पुलिस वाले और इंसपेक्टर सड़क पार इस ओर आये। फुटपाथ की भीड़ छंटने लगी। पुलिस वाले जब गांधी टोपी वालों के पास पहुंचे, भीड़ कुछ हटकर खड़ी थी।

चंद्रशेखर ने उन टोपी वालों को ध्यान से देखा। उनके चेहरों पर आतंक था। पुलिस इंसपेक्टर के चेहरे पर भी वैसा ही आतंक था। उसने उन दोनों का हाथ पकड़ लिया और हुंकारने लगा। वे दोनों मानों कुछ समझ गये और चुप रहे। इंसपेक्टर ने पुलिस वाले को डपटा। उनमें से एक कहीं भागा।

इंसपेक्टर ने फुटपाथ की भीड़ को देखा और विनती के स्वर में बोला, 'डिसपर्स, डिसपर्स प्लीज़।' उसके कहने से पहले ही भीड़ अपने आप छंटने लगी थी। दो-तीन की टोली बनाकर वे कभी पुलिस वालों को, कभी गांधी टोपी वालों को घूर रहे थे।

ये गांधी टोपी वाले निज़ाम कॉलेज के तो कतई नहीं। उनमें से एक लगातार रुमाल से अपना चेहरा पोंछ रहा था। साफ ऐसा लग रहा था कि वे दोनों ही इस असमंजस की स्थिति से नाखुश थे। पुलिस वाले भी उतने ही अप्रसन्न लग रहे थे।

भगाया गया पुलिस वाला कहीं से साइकिल रिक्शा ले आया। इंसपेक्टर ने दोनों टोपी वालों को उसमें चढ़ाया। इस बीच दूसरा पुलिस वाला कहीं से एक साइकिल ले आया। वह जरूर इंसपेक्टर की रही होगी। दोनों पुलिस वाले भी अपनी साइकिल पर सवार हो गये और रिक्शे के पीछे चल दिये। इंसपेक्टर ने टोपी की ओर इशारा कर कहा, 'निकाल दो।' बिना किसी प्रतिरोध के टोपियां उतर गयीं।

चंद्रशेखर को पूरी घटना सपने में घटती-सी लगी। लगा, जैसे कुछ होने वाला था और उसकी शुरुआत ही गलत होकर रह गयी। पता नहीं क्यों सत्याग्रही और पुलिस वाले दोनों ही आतंकग्रस्त जान पड़े।

पहला पीरियड तो खत्म हो गया। साइंस की कक्षाएं गैलरी से सटे हॉल में ही लगती थीं। इन दोनों हालों में जाने के लिए एक ही दरवाजा था। अंग्रेजी के हॉल तक जाने के लिए सात-आठ दरवाजे हैं। अगर पहला पीरियड अंग्रेजी का होता तो कितना अच्छा रहता। खासकर जब आज-जैसी घटनाएं अक्सर होने लगी हों।

पिछले सात-आठ दिनों से कुछ न कुछ चल ही रहा है। रोज न सही, किसी न किसी रोज उसे भी हिस्सा बनना पड़ता है। उस दिन कुछ ऐसा ही हुआ था। वह कॉलेज के अंदर था कि हरिगोपाल ने उसे बाहर गेट के पास भेज दिया। उसे भी बुलाया तो बोला, 'अरे मैं तो तमाशा देख ही चुका हूं।' गेट के पास गया तो चार लड़कियां खड़ी थीं। लड़कियां क्या पूरी महिलाएं थीं वे। फुटपाथ से जो भी गेट तक आता, कुछ न कुछ बोलतीं। ठीक से सुनाई नहीं दिया। एकाध शब्द भी जो

सुनाई दिये, वह भाषा का अंदाजा नहीं लगा सका। चंद्रशेखर कुछ देर बाहर खड़ा रहा, दोबारा जब भीतर जाने लगा, तो दो महिलाएं उसके पास आयीं। कुछ देने आयी थीं। उसने सहजता से हाथ फैला दिया। उन्होंने एक कांच की चूड़ी हाथ पर रख दी और हंस दीं। पास खड़े चार-पांच लोग भी हंस दिये। उसके कॉलेज जाने का मजाक बनाया जा रहा था। हैदराबाद हिंदुस्तान के साथ नहीं मिलना चाहता। स्वामी रामानंद तीर्थ कैद में हैं। कासिम रिज़वी के गुंडे पूरे प्रांत में आग लगा रहे हैं। हेलीकाप्टर की सहायता से गुंडों के लिए और निज़ाम की सेना के लिए विदेश से हथियार लाये जा रहे हैं और इसे कॉलेज जाने की पड़ी है। बड़ा आया कॉलेज जाने वाला।

चंद्रशेखर की समझ में नहीं आया कि वह उस चूड़ी का क्या करे। अगर उसे फेंक दे तो उनका अपमान होगा। जेब में डाले तो उनके मजाक का अनुमोदन होगा। उसने चूड़ी को उनकी ओर बढ़ा दिया। वे और भी हंसने लगीं। उसने चूड़ी एक के हाथ में थमा दी और भीतर भाग गया। फिर क्लास में नहीं गया। दूर से ही उन महिलाओं को देखता रहा। तेज तर्रार छात्रों की ओर उन्होंने चूड़ी नहीं बढ़ायी। कार से उतरने वाले छात्रों या बढ़िया कपड़े पहनने वालों को उन्होंने नहीं छेड़ा। मतलब यह हुआ, जीवन से संघर्ष करने वाले, या सीधे सरल व्यक्तियों के लिए ही हड़ताल और सत्याग्रह की आवश्यकता है। उनके पास जो कुछ भी थोड़ा बहुत बचा हो, उसका भी बलिदान कर डालो। न करें, तो उनका मजाक उड़ाओ, उनको विवश करो, या जबर्दस्ती करो।

पहला पीरियड खत्म हुआ। चंद्रशेखर अपने साथियों के पास चला गया।

8

कुल मिलाकर शहर में तीन-चार हजार के लगभग तमिलभाषी रहे होंगे। उनके बीच में वह सहसा एक गायक के रूप में कैसे जाना जाने लगा, इसकी अपनी गाथा है। पाठ पढ़ना, या पहाड़ा रटना, गुल्ली खेलना, पेड़ पर चढ़ना, लट्टू नचाना, पतंग उड़ाना, इन सभी शौकों की लिस्ट में संगीत सीखना भी खुद बखुद शामिल हो गया। जिस तरह मां ने बहनों को जबरन बर्तन मांजना सिखाया था, उसी तरह उन्हें जबरन संगीत सिखाने आलवार आ पहुंचे।

आलवार की उम्र साठ, सत्तर के करीब रही होगी। उनकी चोटी की वजह से ही, उनका सिर हिलाकर गाना नियंत्रित रहता। एक बड़ा-सा झोला लटकाकर वे सुबह सात से आठ के बीच हमारे घर पहुंचते। खुद चटाई बिछाकर बैठ जाते। उनके आने के लगभग पंद्रह मिनट के बाद बड़ी बहन हारमोनियम रख जाती। अगले पंद्रह मिनट के बाद छोटी वाली बहन, लोटा भर पानी रख जाती। अगले पंद्रह मिनट में मां उनके लिए गिलास में कॉफी लाती। वे कॉफी पीते, पान की गिलौरी मुंह में भरते और अभ्यास शुरू करते। सरगम के बीच चार बार टोककर उनसे दुबारा गवाते। दोनों एक ही सुर में कम गातीं। इसी बीच बड़ी बहन को हंसी आ जाती। कारण किसी की समझ में नहीं आता। हर स्वर के बाद अपनी हंसी को दबा नहीं पाती। उसे देख छोटी वाली बहन भी हंस पड़ती। आलवार नाराज होते। आखिर मां आकर दोनों की पीठ पर धौल जमातीं और हंगामा खत्म होता। सवा नौ और साढ़े नौ के बीच हम गायन बंद कर जल्दी-जल्दी खाना निगलते। हम स्कूल की ओर भागते और आलवार धीमे-से उठकर अपनी अगली शिष्या के घर की ओर चल देते। वह दो या तीन मील दूर रहा होगा। वह कब घर वापस जाते हैं, कब खाना खाते हैं, और कब सोते हैं, कब परिवार का, गृहस्थी का काम देखते हैं, कोई नहीं जानता। वे हर समय कहीं न कहीं सरगम सिखा रहे होते। माया 'मालव' गौल राग की कोई देवी होती तो, उनकी अथक साधना पर प्रसन्न होकर उनका उद्धार कर देती। उनकी फीस तीन रुपये से अधिक नहीं रही। मेरी बहनें नवरात्रि

को छोड़ शेष किसी भी दिन उनसे सीखे गीत नहीं गाती थीं। पर मैं गाता था। मेरा छोटा भाई और छोटी बहनें भी गाया करतीं। एक बार पिताजी को भी स. रे. ग. म. गुनगुनाते सुना था।

शहर में संगीत का शिक्षक कोई और नहीं था। पर सहसा प्रतिस्पर्धा में एक और व्यक्ति आ गया। सुंदर भागवतर के नाम से एक संगीतज्ञ जरी की धोती और उत्तरीय समेत सिकंदराबाद आये। आलवार जहां सरगम से शुरू कर, आरंभिक पाठों में ही सालों लगाया करते, सुंदर भागवतर ने शुरुआत ही गीतों से की। सरगम से ऊबे लोग गीत सुनकर खुश हुए। सिकंदराबाद आने के बीस दिनों में ही, बीस घरों में वे शिक्षक नियुक्त किये गये।

सुंदर भागवतर रोज नहीं आते थे। सप्ताह में दो या तीन दिन। फीस पांच रुपये। हम से पहले तो पंद्रह रुपये मांगे बाद में सात रुपये पर राजी हो गये। उनकी आंखें बड़ी, पर लाल रहतीं। आते वक्त कोई न कोई चीज गिराते, खिसकाते आते। अभ्यास शुरू करने से पहले एक बार चटाई झाड़ते। हारमोनियम बजाते वक्त संगीत के स्वर के साथ कई आवाजें आतीं। वे आत्म-विश्वास के साथ रहते। हमारे शहर के तमिलभाषियों की कला चेतना को उन्होंने जगाया। कई लोग मजाक में कहते कला चेतना को जगाकर पाताल में धकेल दिया। आलवार भी कुछ इसी तरह कहते। वे कहते,'अरे, इत्र लगाकर सारे गीत लोक-गीतों की तर्ज पर सिखायेगा तो संगीत का क्या होगा ? पुख्ता आधार तो हो ! रास्ते में गुजरती किसी भी लड़की को बिठाकर गाओ तो नकल तो वह कर लेगी। पर वह कोई संगीत हुआ। वाणी देवी सिर नहीं फोड़ेंगी तो क्या करेंगी ?'

आलवार के जाने के बाद सुंदर भागवत से सीखते हुए हम लोग,'श्री रामा पादमा की कृपा जानिये' गा रहे थे। हारमोनियम पर पूरा जोर लगाकर'प, ध, नि, ध, पा, ध, मा' बजाते और मेरी बहनें साथ कोरस में चीखतीं तो जैसे आने वाले की समझ में कुछ नहीं आता। आपकी कल्पना चाहे कितनी अपार हो। पर जब तक आप मध्य-युगीन साहसिक कार्यों के साथ सुंदर भागवतर के प्रशिक्षण की तुलना नहीं कर सकते, आप उसे समझ नहीं सकते।

छः महीने तक आलवार की छाती पर मूंग दलने के बाद एक दिन सहसा सुंदर भागवतर शहर छोड़ गये। दूध वाले का और परचून की दुकान का बकाया भी छोड़ गये थे। मकान का किराया भी बाकी रह गया। कई दिनों तक लोग उनकी खोज-खबर लेते रहे, फिर थककर बैठ गये। उसके बाद आलवार के भाव बढ़ गये। फीस भी अधिक, और अब पहले की तरह एक-एक घर में घंटों नहीं बैठते थे। हफ्ते में बस तीन दिन ही आते।

लिहाजा हमारे शहर का संगीत, न तो सुंदर भागवतर की शैली में चला, न ही आलवार की शैली में। दोनों के बीच का होकर रह गया।

इसी संगीत के दम पर मैंने नाम भी खूब कमाया। अच्छे और खराब संगीत में भेद करने की उम्र नहीं थी मेरी। न ही परिवेश कुछ वैसा था। हुआ यह कि अक्सर मैं भी मन में यही मानकर गाता, कि मैं अच्छा गा रहा हूं। उस जमाने में पिल्को रेडियो पर रात खर-खराहटों के बीच धीमे से सुने जाने वाले तमिल गीतों को दोहराता। खैर, शब्द तो एक बार सुन लेने से याद नहीं हो पाते। उनमें भी कई गीतों के बोल, गायक अपने ढंग से तोड़-मरोड़ कर गाते। मुसिरि सुब्रह्मण्यम अय्यर ने कांग्रेस प्रसार का एक रिकार्ड दिया है, उस गीत को मैं काफी दिनों तक, 'उदवि पुरिवदु उलगु कडल' गाया करता। यह तो बाद में पता चला कि उसके सही बोल हैं, 'उदवि पुरिवदु नमदु कडन।'

अब तक हमारे हेडमास्टर या तो उर्दू के विद्वान हुआ करते या तेलुगु के। एक बार तमिलनाडु के तमिल प्रेमी विद्वान को हेडमास्टर नियुक्त किया गया। देखा जाये तो हमारे स्कूल के प्रबंधक तमिलभाषी ही थे। पर तीन-चार पुश्तों से निजाम की सेवा में लगा वह वंश विचित्र मिश्रित भाषा बोला करता। हमारे स्कूल के संस्थापकों के विशाल रंगीन चित्र हाल में टंगे रहते। बार-बार सोमसुंदर मुदलियार, हनुमंत राव जैसे नाम ही आते। सभी में दीवान बहादुर, राव बहादुर का पुछल्ला जरूर लगा रहता। सिर पर जरीदार पगड़ी या टोपी, मूंछ, भभूत, चंदन या रोली का टीका, पाकेट घड़ी। कोई घोड़े पर सवार रहता। एक चित्र में 'सर' की उपाधि भी जुड़ी हुई थी। उनके चित्र में कमर के नीचे एक बड़ी तलवार लटकती। मैं चित्र के सामने काफी देर आंखें मूंदकर खड़ा रहता।

तमिलभाषियों द्वारा स्थापित स्कूल होने के बावजूद उसमें मुश्किल से सौ तमिल भाषी छात्र थे। हेडमास्टर ने उन सौ छात्रों के साथ व्यक्तिगत परिचय कर लिया। उस स्कूल में हेडमास्टर को प्रिंसिपल कहते थे।

नये प्रिंसिपल ने कई नयी आदतें डालीं। स्कूल लगने के तुरंत बाद गेट बंद कर दिया गया। फिर पूरी छुट्टी से पांच मिनट पहले ही खुलता। हर सप्ताह प्रार्थना के बाद, किसी न किसी अध्यापक से भाषण दिलवाया जाता। प्रति सप्ताह, एक पीरियड, 'जन गण मन' का भी रहता। और तो और 'तमिल परिषद' की स्थापना की गयी। इस परिषद की सभा में तेलुगु, उर्दू छात्रों का आना अनिवार्य था। पहली सभा एक दिन दोपहर तीन बजे शुरू हुई। यानी आखिरी पीरियड गोल।

प्रिंसिपल चार बजे तक आये। साथ ही स्कूल कमेटी के अध्यक्ष और सैक्रेटरी

भी आये। एक की टोपी जरीदार थी। दूसरे के सिर पर साफा। प्रिंसिपल के सिर पर सिर्फ कटे बाल।

प्रिंसिपल ने पहले जरीदार टोपी और साफे वाले का स्वागत किया। हमारे यहां ऐसी तमिल कम ही बोली जाती। यहां तक कि हमारे तमिल अध्यापक भी ऐसी तमिल नहीं बोलते। अक्सर वे कहते 'जल्दी वा।' 'अरे बेजारा पोच्चु।' पहली तारीख को जीतम लेते।

प्रिंसिपल ने स्कूल के संस्थापक, पोषक और अध्यक्ष की प्रशंसा की। फिर बोले, 'अब प्रार्थना से कार्यक्रम शुरू होगा।' फिर उन्होंने आवाज दी, ' चंद्रशेखर' ! फर्श पर कई सौ छात्र बैठे थे तथा अनेक अध्यापक दीवार के सहारे खड़े थे। एक भयंकर चुप्पी छा गयी। प्रिंसिपल ने दोबारा आवाज लगायी।

मैंने अपने आस-पास देखा। किसे बुला रहे हैं वे ? कुलबुलाहट-सी दौड़ गयी हॉल में बैठे शरीरों में। पर कोई नहीं उठा। एक कोने में खड़े तमिल पंडित ने मेरी ओर इशारा करके कहा, 'तुम्हें ही तो बुला रहे हैं, उठो।' मैंने फिर चारों ओर देखा।

मेरे पास बैठे लड़कों ने मेरी पीठ और कमर पर चिकोटियां काटीं। तमिल पंडितजी तेजी से मेरे पास आये और बोले, 'उठो, जाओ।' मैं उठ खड़ा हुआ। पंडितजी फिर फुसफुसाये, 'जाओ।' मैं मंच की ओर चल पड़ा।

उस दिन मैं जो कमीज पहने था, वह काफी छोटी थी। उसकी लंबाई कमर तक ही थी। उसके बगल के दोनों किनारों से मेरा ढीला नेकर और उसमें बंधी गठान साफ देखी जा सकती थी। पता नहीं, शायद लोगों ने देखा भी हो। मैंने कमीज को हाथ से खींचा और धीमे से आगे बढ़ा। नेकर बड़ा था और ढीला भी। उसके दोनों कोने, गोपियों के लहंगों की तरह झूलते रहे। उसके भीतर से घुसती हवा, मेरे पेट को सुन्न बना रही थी।

मैं मंच तक पहुंच गया। एक सीढ़ी पर पैर रखकर मंच पर चढ़ना था। मेरे पैर को हल्की-सी ठोकर लगी। मेरे सिर पर चुपड़ा तिल का तेल, सैक्रेटरी की कमीज में जरूर लगा होगा।

मैंने मंच पर खड़े होकर नीचे नजर दौड़ायी। कई जोड़ी आंखें मुझे भेद रही थीं। कृष्णस्वामी की आंखों ग्लन थी। उसके भाई, कई परिचित, कुछ अपरिचित, कुछ अल्प परिचित, मेरा कक्षा की पिछली बैंच पर बैठकर मुझ पर मूंगफली के दाने फेंकने वाला बलवंत सिंह। उसके बाल, उसकी पगड़ी से निकलकर कान के बाहर लटक रहे थे। वह मुझे लगातार घूर रहा था। मेरी स्थिति पर उन्हें सहानुभूति हो रही थी, या जलन, या फिर उपहास या दोस्ताना, मैं समझ नहीं पाया। मैं मंच के किनारे खड़ा हूं, सबको झेलता हुआ।

'गाओ, कोई भजन सुनाओ ।' प्रिंसिपल बोले । चौड़ा चेहरा, भयंकर रूप से तनी मूंछें । उन घनी मूंछों के बीच जंगली जंतु होंगे न ! शेर, चीते, अजगर ।

'गाओ बेटे ।'

सैक्रेटरी, अध्यक्ष, प्रिंसिपल सभी मेरे गायन की प्रतीक्षा में हैं । मुझे इस स्थिति तक धकेला किसने है ? पता नहीं, कौन दुश्मन मेरे गाने की बात प्रिंसिपल के कानों में फूंक गया ?

अब मैं बच ही नहीं सकता । यानी बगैर गाये यहां मोक्ष नहीं । यह क्षण कभी समाप्त नहीं हो सकता । यह खिंचता ही जायेगा और मैं यूं ही खड़ा रह जाऊंगा । पता नहीं मेरी आंखें किसलिए हैं ? मेरे कानों की संवेदना बरकरार क्यों है ? यह चेतना ? यह संवेदना ? उफ !

'कितनी देर और लगाओगे भाई । तुम भजन नहीं गा सकते ?' प्रिंसिपल ने पूछा । सैक्रेटरी बोले, 'क्या पता फिल्मी गाने ही याद हों इसे ।' तीनों हंस पड़े । भजन ! मुझे कोई भजन याद आया, तो वह था, 'श्री राम पादमा ।'

पता नहीं क्यों उसे गा नहीं पाया । लगा, वह भजन या तो सुंदर भागवतर गा सकते हैं, या उनकी संगत में मेरी दोनों बहनें । सुंदर भागवतर तेजी के साथ जांघ पर ताल देते । जांघ को भी बार-बार जमीन पर उठा-उठा कर पटकते । मेरी बहनें द्रुत ताल में आठवें सुर में गातीं । प्रिंसिपल हारमोनियम बजाते तो शायद मैं गा सकता !

पर मैंने गाया । उस क्षण तक मुझे मालूम नहीं था, मैं क्या गाऊंगा । पहली पंक्ति जब शुरू की तो मुझे अगली पंक्ति का पता तक नहीं था । सैक्रेटरी ने ठीक ही कहा था । वह फिल्मी गीत था । मैंने वह फिल्म देखी ही नहीं । वह फिल्म हमारे शहर में आयी नहीं थी । रेडियो में हम जो भी सुनते थे, उसी का गलत सही संस्करण था वह । शकुंतला ने दुष्यंत के प्रथम मिलन के बाद शायद गाया हो । मैंने वही गीत गाया ।

मैंने आधे शब्द खा लिये, आधे शब्द गलत ठूंसे और किसी तरह गीत को समाप्त किया और मंच से नीचे उतर आया । मेरे अपने स्थान पर लौटने तक पूरा सन्नाटा छाया हुआ था । शायद गीत किसी की समझ में नहीं आया ।

सैक्रेटरी उठकर बोलने लगे । मैं अपनी कक्षा की पंक्ति तोड़कर पता नहीं कहां बैठा हुआ था । वे लड़के मुझे बार-बार धकेल रहे थे । मैं जैसे भौंचक्का-सा चेतना-शून्य बैठा हुआ था ।

सैक्रेटरी अपने भाषण में आधे घंटे तक मेरे गीत की चर्चा करते रहे । बेचारे को क्या मालूम था कि वह कोई फिल्मी गीत है । कोई और भी कहां जानता था । मुझे

भी क्या मालूम था। बहरहाल सैक्रेटरी ने उस गीत की तारीफ की। हो सकता है उन्होंने तमिल गीत कभी सुने ही नहीं हों। फिल्मी गीतों का नाम लेकर उनका मज़ाक बनाया जरूर था, पर शायद 'शकुंतला' फिल्म के बारे में उनको कोई जानकारी नहीं थी। एम. एस. और जी. एन. वी. उनके लिए अंग्रेजी के वर्णमाला के अक्षर ही लगते रहे होंगे। यही वजह थी, कि वे मेरे गीत की तारीफ करते रहे थे। उन्होंने एकाध परामर्श भी दिये। इतने प्यारे भजन में बाईं आंख और भुजाओं के फड़कने की बात कही गयी है। यह स्कूल लड़कों का है। क्या ही अच्छा होता जो इस पंक्ति को इस तरह गाया जाता, कि 'मेरी दायीं आंख और भुजा फड़क रही हैं जाने क्यों।'

सैक्रेटरी की प्रशंसा की प्रतिक्रिया काफी दिनों तक बनी रही। सच पूछो तो उस दिन मैं पगलाया-सा घूम रहा था। घर पर मां ने काढ़ा बनाकर मुझे पिलाया। घर पर किसी को कुछ भी हो जाता तो मां यही बनाकर पिलातीं। पांच-छ: दिन बाद गंगाराम ने आकर मुझे बुलाया। यह प्रिंसिपल का बुलावा था। गंगाराम स्कूल का चौकीदार था। उस स्कूल के जितने भी चपरासी थे उनमें केवल गंगाराम ही स्वस्थ दिखता था। वह मराठी मिश्रित उर्दू बोलता। उसे कोई और भाषा कतई नहीं आती। गंगाराम के कहने पर मैं जब प्रिंसिपल के कमरे में गया तो स्कूल की शाम की शिफ्ट समाप्त हो गयी थी। पूरी इमारत खाली पड़ी थी। प्रिंसिपल कमरे में नहीं थे।

मैं वहां खड़ा एक-एक चीज को देखता रहा। कितने ही शील्ड, चांदी के कप, सर्टिफिकेट-जैसी कई चीजें अलमारी में बंद बदरंग हो रही थीं। दीवार पर चार-पांच भौगोलिक नक्शे। विश्व का, भारत का, इंगलैंड का, निजाम सल्तनत का। फिर जीव-विज्ञान संबंधी नक्शे। किनारे पर दीवार के सहारे टिकी दो-चार छड़ियां। किताबें, कापियां। हम निबंध लिखकर जिस तरह अध्यापक को दिखाया करते थे, उसी तरह अध्यापक भी निबंध लिखकर प्रिंसिपल को दिखायें; प्रिंसिपल उनमें गलतियां ढूंढ़कर लाल स्याही से आड़ी-तिरछी लाइनें खींचे, और कापियां उनके मुंह पर दे मारे। काश कि ऐसा हो।

'व्हाट डू यू वांट ?' मेरा गला सूख गया। मैंने मुड़कर देखा। प्रिंसिपल भीतर आ गये थे।

'व्हाट डू यू वांट ? व्हाट ईज़ योर नेम ?' उन्होंने दोबारा पूछा।

मैंने कहना चाहा पर मेरा वाक्य 'गंगाराम. .. ' के बाद अटक गया।

पर उन्होंने सहसा पहचान लिया।

'तुम चंद्रशेखर हो न ? तुम्हीं ने तो भजन गाया था।'

'हां सर।'

'मैंने तो तुम्हें कल ही बुलवाया था।'

'पर गंगाराम ने अभी आकर बताया है।'

'अच्छा-अच्छा। कुछ जानते हो इस स्कूल में तुम्हारे अलावा और कितने गाने वाले हैं ?'

'क्या कहा सर।'

'गाने वाले, यानी गाना जानने वाले।'

मुझे उनका प्रश्न देर बाद समझ में आया।

'जगन गाता है सर। जगन्नाथ। स्काउट के कैंप फायर में वह अक्सर गाता है।'

'कैसा गाना।'

'तेलुगु और उर्दू।'

'तमिल नहीं गा सकता क्या ?'

'वह तो तेलुगुभाषी है सर।'

'पर मुझे तो तमिलभाषी गायक चाहिए।'

'तमिल तो यहां कम ही जानते होंगे, सर।'

'वरदाचारी का लड़का गाता है ना ?'

'कौन सर ?'

'तुम्हारी पहचान का कोई और नहीं है क्या ?'

'अपने तमिल के पंडितजी भी गाते हैं सर।'

'तमिल के पंडितजी', प्रिंसिपल ने ठहाका लगाया।'वह भी कोई गाना है ?'

मैं चुप रहा। सच ही तो है, तिरुक्कुरल हो या कोई और पद, वे एक ही राग में गाते थे। पर मुझे तो वह ठीक ही लगा करता था।

'तमिल लड़कों को इकट्ठा कर एक तमिल नाटक खेलना होगा।' प्रिंसिपल ने कहा। मैं फिर भी चुप रहा। प्रिंसिपल की बातें मेरी समझ के परे थीं।

'इस स्कूल में सुना है, एक बार भी तमिल नाटक नहीं खेला गया। तेलुगु नाटक खेले जाते हैं, अंग्रेजी नाटक भी एकाध बार खेले गये हैं। तमिल नाटक एक भी नहीं! अब से हर साल एक नाटक हमारा होना चाहिए।'

मैं चुप रहा।

'इस साल कर्ण का नाटक खेलेंगे। नाटक मेरे पास हैं। कर्ण, उसकी मां, और कृष्ण, बस गाने वाले यही तीन पात्र हैं। तुम्हें मैं कर्ण की मां भी बना दूं, तो कर्ण और कृष्ण के पात्र के लिए लड़के चाहिए। तुम नाटे हो न, इसलिए पुरुष पात्र में नहीं जमोगे।'

मुझे लगा, अब एक घोर विपत्ति मुझे घेरने वाली है। एक गीत तो जैसे-तैसे

गा ही डाला। अब आगे इतने गीत कैसे गा पाऊंगा ? वह भी लड़की के पात्र में। मुझे अब घर वाले, दोस्त, दुश्मन सभी याद आने लगे। अगर लांसर बैरक्स में किसी को पता तक चल जाये, कि मैंने लड़की का अभिनय किया है, तो शामत आ जायेगी। मैं कांप गया।

'तुम्हारी नज़र में कोई हो तो बताना। मैं एक-एक कक्षा में पुछवाऊंगा।' प्रिंसिपल बोले। फिर उन्होंने अगला सवाल किया, 'सुंदरम् ठीक-ठाक आ रहा है न ?'

'कौन सुंदरम् ?'

'अरे वही, गाने वाला सुंदरम्।'

मुझे तभी पता लगा कि सुंदर भागवतर का एक नाम सुंदरम् भी है। और यह भी कि मेरे गाने की बात प्रिंसिपल तक कैसे पहुंची।

हमारे स्कूल में हमने तमिल नाटक खेला। खूब टिकट बिके। सिकंदराबाद के सारे तमिलभाषी 'कर्ण' देखने आये। नाटक दो दिन खेला गया। पहले दिन मुझे सफेद साड़ी पहनायी गयी। मुझे विधवा के रूप में देखकर लोगों की सहानुभूति के बदले हंसी ही अधिक आयी। जब भी मैं मंच पर आता लोगों में हंसी फैल जाती पर मेरी मां आखिर तक नहीं हंसी। मैं पांच बार मंच पर आया। प्रवेश और प्रस्थान के समय गीत गाते हुए आना और जाना पड़ता था। फिर दृश्य के बीच प्रत्येक दृश्य में एक गीत ! एक दृश्य में, मुझे और कर्ण को गीतों के माध्यम से संवाद बढ़ाना था। 'तुम पुत्र हो, तुम मेरे पुत्र हो, तुम ही केवल मेरे पुत्र हो।' मेरे गाते ही, वह गाता, 'तुम मां हो, मेरी मां हो, तुम ही केवल मेरी मां हो।' फिर दुर्योधन के प्रति अपनी कृतज्ञता का हवाला देता हुआ वचन देता है कि अर्जुन को छोड़कर बाकी पांडवों के साथ वह युद्ध नहीं करेगा। नागास्त्र का प्रयोग एक ही बार करेगा। मैं भी गाता हुआ वचन देता हूं कि मृत्यु के बाद उसके मृत शरीर से मैं लिपटकर रोऊंगा।

'बेटा, तेरी मौत के बाद,

'जीवन कैसा ? वृथा है यह जीवन।'

मैं बिलहरी राग में गाता। पर गाते हुए रोना कठिन काम था। दूसरे दिन काली साड़ी पहनकर मैं रोया !

फल यह हुआ, कि जब मैंने निजाम कॉलेज में दाखिला लिया तो केवल अठारह छात्रों ने मिलकर तमिल असोसिएशन की स्थापना की। मुझे गाने के लिए विवश किया गया। मैंने उस दिन भजन के बजाये, 'विडुदलै', वाला स्वतंत्रता-संग्राम का गीत गाया। उसके अगले ही दिन 'ज्वाइन इंडियन यूनियन डे' का हंगामा हुआ। बस इसके एक सप्ताह बाद हिंदुस्तान आज़ाद हो गया। हैदराबद प्रदेश कांग्रेस खत्म कर दी

गयी और उसका काम बंबई में होने लगा। जयप्रकाश नारायण प्रमुख सलाहकार थे। पुलिस की आंखों में धूल झोंककर हैदराबाद आये काशीनाथ वैद्य के सामने नरसिंह राव ने एक दिन मुझे ला खड़ा किया। मेरे गीत का अनुवाद उसने तेलुगु में उन्हें सुनाया। उन्होंने प्रेरणा दी कि वह गीत पूरी निजाम सल्तनत का क्रांति गीत बनेगा। मुझे लोग क्रांतिकारी समझने लगे।

9

सालारजंग हॉल में प्रो० रंगा का पीरियड शुरू हुआ। रिचर्ड द्वितीय।'ओल्ड जॉन ऑफ कांट' रिचर्ड ने शुरू किया है। वैसे छात्रों ने रंगा का नाम 'ओल्ड जॉन ऑफ कांट' रख दिया है। रंगा की कक्षा शुरू होने के कुछ देर तक हलचल बनी रहती है, फिर सब शांत हो जाता है। आखिरी बेंच पर बैठे छात्र, मेज पर सिर टिकाकर ऊंघने लगते हैं।

चंद्रशेखर आखिरी बेंच पर बैठा हुआ था। कक्षा में अक्सर प्रो० रंगा, अगली पंक्ति में बैठे छात्रों की ओर ही देखकर भाषण देते। नोलिंग बूक और काउब्रे उनके मुंह से निकलकर उन छात्रों को तंग करते। अक्सर आगे की सीटें खाली ही रहतीं। चंद्रशेखर की तरह कई लोग भागकर आते और पीछे की सीटें हथिया लेते। इस लिहाज से रंगा ठीक थे, वे छात्रों को तंग नहीं करते थे। हाजिरी लेते, फिर बाकी के लगभग पचपन मिनट 'रिचर्ड द्वितीय' की पुस्तक साभिनय पढ़ना शुरू कर देते। पिछली छः कक्षाओं में पहला अंक ही चल रहा है। हर पीरियड में वह शुरू से पढ़ा करते, 'ओल्ड जॉन ऑफ कांट. ..

रंगा के स्वर के अलावा सब शात रहता। सालारजंग के हॉल के पास ही कॉलेज का दफ्तर था। वहां से टाइप-राइटर की धीमी आवाज तब तक लगातार आती रहती जब तक कि सड़क से गुजरने वाली मोटरों की आवाजें।

चंद्रशेखर के पास बैठा मसूद और सामने की बैंच पर अनवर अली खां चैन से बैठे ऊंघ रहे थे। दोनों की शेरवानी बढ़िया कपड़े की बनी थी। इस तरह का संपन्न वातावरण सिर्फ अंग्रेजी की कक्षा में ही रहता। विज्ञान और इतिहास में छात्रों के लिए अंग्रेजी अनिवार्य थी। विज्ञान के छात्र हों या छात्राएं, दोनो के चेहरों पर विवशता का भाव साफ झलकता। टेढ़ी पीठ, टेढ़ी भौंहें, नाम के लिए कपड़े—यह तो इतिहास विभाग का नहीं, दोनों ही विभागों का ट्रेड मार्क था। पर इतिहास विभाग में उत्साह, संपन्नता और आराम-तलब जिंदगी के साथ लड़कियां भी अधिक थीं।

कॉलेज में आने वाली कारों में अधिकांश उन्हीं की होतीं । कॉलेज के खेल-कूद के सामान का प्रयोग वे ही अधिक करते, वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान उन्हीं का होता, करतल ध्वनि उन्हीं के लिए होती । कॉलेज यूनियन के प्रेसीडेंट से लेकर सैक्रेटरी तक वे ही होते ।

मसूद ने मेज पर करवट बदली तो चंद्रशेखर की किताब नीचे गिर गयी । मसूद ने अपने लंबे हाथों से किताब उठा ली और 'सॉरी दोस्त', कहकर दोबारा सोने लगा ।

उसकी चौड़ी भुजाओं की मछलियां धीमे-धीमे उठ-गिर रही थीं । उसके चेहरे पर हल्के बाल उग आये थे । मगर उसके चेहरे पर अभी भी बाल-सुलभ सरलता थी । उसकी बगल में बैठा वह खुद, स्वयं को उससे कई गुना बूढ़ा महसूस कह रहा था ।

रंगा शेक्सपीयर की 'ड्रामेटिक आयरनी' की चर्चा कर रहे थे । अपने परम प्रिय 'जॉन ऑफ कांट' का रिचर्ड तिरस्कार करता है । इस तरह रिचर्ड जहां सर्वाधिकार प्राप्त सत्ताधीश था, सत्ता को खोकर, जेल में डाल दिया जाता है । तब उसका प्रलाप जॉन के प्रलाप से कहीं कम नहीं है । पर रंगा, इन दोनों से कहीं अधिक प्रलाप करने लगे हैं ।

'जॉन ऑफ कांट' एक प्रमुख देश-प्रेमी की तरह शेक्सपीयर के नाटक में उभरता है । वह बूढ़ा है, राजा के द्वारा उदासीन किया गया पात्र है । पर वह श्रेष्ठ देश-भक्त है । उसकी अंतिम सांसें इंगलैंड के लिए हैं या अपने प्रिय पुत्र के लिए, संदेह होता है ।'

देश-प्रेम ! चंद्रशेखर रंगा के भाषण को भुलाकर आस-पास देखने लगा । सौ से भी अधिक छात्र-छात्राएं । कॉलेज के नियमानुसार आधे से अधिक कोट पहने थे । संभव था कि कई लोगों के पास यूनिफार्म का एक ही सेट हो । मुड़े, गंदे, फटे कपड़े भी अक्सर देखने में आते हैं । छात्राओं के लिए कोई बंधन नहीं था । सभी के लिए साड़ी । पर कोट के कपड़े-सी मोटी साड़ी उस व्यक्ति का पूरा इतिहास बता देती । मसूद की शेरवानी से अंदाज लगाया जा सकता है कि उसका घर कैसा होगा, वह क्या और कितना खाता होगा, घर पर कितने नौकर होंगे, उसके पिताजी की मानसिक स्थिति इस नवंबर के महीने में कैसी होगी—सब कुछ का अंदाज़ा लगाया जा सकता है ।'जॉन ऑफ कांट' के भाषण पर उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इसका भी अंदाज लगाया जा सकता है । मसूद खुद छह फुटा होकर भी पिताजी-सा तीखा कतई नहीं होगा । मगर उस रोज वह खुद कितना उखड़ा-उखड़ा लग रहा था ।

दस दिन पहले की बात है । दोपहर के भोजन के समय सहसा कॉलेज में हलचल मच गयी । हैदराबाद के सभी कॉलेज छात्र विरोधी रैली आयोजित कर रहे हैं ।

पुलिस की अनुमति मिल गयी है। बस राजनीतिक प्रतिनिधित्व हो तो बढ़िया। लोग की मांगें पूरी करनी होंगी।

पर असली कारण तो कुछ और ही था। कॉलेज से निकलते ही, केलिडोस्कोप i बिखरते रंगों की तरह शेरवानी पहने छात्र एक ओर हो जाते हैं। कमीज़-कोट औ पजामे वाले दूसरे कोने में। शेरवानी वालों के लिए कक्षाएं लगेंगी। प्रिंसिपल औ प्रोफेसर बरामदे में और मैदान में खड़े हैं। उनका असली रूप आज तक किसी की समझ में नहीं आया। उनकी उपस्थिति से ही उनके प्रभुत्व का पता लगता था, लेकिन आज कितने चिंतित-से वे मैदान में खड़े हैं। इस तरह उनके दिखने मात्र से उनके स्वरूप, उनके व्यक्तित्व का हनन होगा, यह जानते हुए भी वे चिंतित और आक्रांत-से खड़े हैं। रंगा भी खड़े हैं। मुहम्मद गनी भी खड़े हैं। तमिल के विद्वान और प्रिंसिपल भी खड़े हैं।

बशीर बाग से एक छोटी-सी भीड़ आयी। निज़ाम कॉलेज के छात्र भी उसमें शामिल हो गये। एक-दूसरे से सभी कम परिचित थे। अत: एक ही जूलूस के दो भाग साफ देखे जा सकते थे। जुलूस के नेता कुछ बुजुर्ग थे। वे छात्र तो कतई नहीं हो सकते थे। सड़क के बायीं ओर से जुलूस बढ़ता जा रहा है। हैदराबाद पुलिस के आदमी चारों ओर से घेरकर चल रहे हैं।

भीड़ में हलचल बढ़ रही है। नारे नहीं हैं। आबिद रोड तक पहुंचते-पहुंचते जुलूस की लंबाई काफी बढ़ गयी है। सड़क से बीस-पच्चीस चौड़ी सीढ़ियां चढ़ने पर सिनेमा हॉल तक पहुंचा जा सकता है। सस्ती के जमाने में बनायी गयी इमारत होगी। अगर वहां सड़क नहीं होती और सिनेमा का विज्ञापन न होता तो लगता यह इमारत कोई राजमहल है। इस समय 'अनमोल घड़ी' चल रही है। फिल्म देखने आयी भीड़ सीढ़ियों में खड़ी है। वह जुलूस को देख रही है। लोग तमाशा देख रहे हैं। पर क्या सचमुच यह जुलूस एक तमाशा है ? दोपहर का शो, वह भी हिंदी फिल्म देखने वालों का अपना ही एक वर्ग है। वे किसी भी धर्म के हों, उनका वर्ग एक ही है। वे सिनेमा हाल की कुर्सियों पर पैर रखकर चला करते हैं। सिगरेट भी हॉल के भीतर ही पीते हैं। अक्सर यहां-वहां खुजलाते रहते हैं। जहां जी चाहे थूकते हैं। रील कट जाये तो सीटियां बजाते हैं। पर आजकल जैसे हालात हैं, क्या वे शांति के साथ फिल्म देख पाते होंगे ? अभी एक स्टंट फिल्म आयी थी, 'पंजाब मेल', नायक और नायिका खूब उछलते-गाते हैं। गोल-मटोल नाडिया जमीन से उछलकर दूसरी मंजिल पर छलांग लगाती। सहसा कभी छत पर लटक जाती। जान कावस फानूस को पकड़कर लटकता और वैसे ही उछलकर घोड़े पर बैठ जाता। उस फिल्म में कांग्रेस का झंडा दिखाया गया था। एक जगह गांधीजी को भी दिखाया गया था। सीटी बजाने वाली जनता

चिल्लाने लगी। सिनेमा को वहीं रोक दिया गया। जहां तिरंगा दिखाया जाता, लोगों द्वारा उसे उतारकर फाड़ दिया जाता।'अनमोल घड़ी' खतरनाक फिल्म कतई नहीं थी। बचपन में जो प्यार किया करते थे, वे ही बड़े होकर भी प्यार करते जाते हैं। काम न धाम। नूरजहां सुरेंद्र को याद करके गीत गाती है। सुरेंद्र नूरजहां को याद करके गाता है। सुरैया दोनों की याद में गाती है।

जुलूस सुल्तान बाज़ार तक पहुंचते-पहुंचते बढ़ने लगा। अब जुलूस में छात्रों के अलावा दूसरे लोग भी शामिल हो गये थे। सुल्तान बाजार की सड़कों पर ही पिछले कुछ दिनों से मार-काट मची है। हिंदुस्तान की आजादी के पहले ही किसी ने तिरंगा फहरा दिया है। फिर पंद्रह अगस्त को पुलिस वालों को भी पता नहीं चल सका कि इतनी सुबह झंडा किसने फहरा दिया ! सब चकित थे। उस दिन पुलिस वाले कटे-कटे रहे। शाम को लाठी चार्ज, धारा 144, अश्रुगैस, चाकू-छुरे। हैदराबाद के दंगों की प्रतिक्रिया सिकंदराबाद में भी हुई। चंद्रशेखर ने माथा सहलाकर देखा। गलियों से होकर जुलूस लकड़ी के पुल तक पहुंच गया। मूसी नदी पर बना छोटा-सा पुल—उसके उस पार एक मैदान है। इसी मैदान में सभा का आयोजन होगा। पुल के पहले ही पुलिस का दस्ता खड़ा है। पुलिस वाले ही नहीं, बड़े-बड़े अफसर भी हैं। जुलूस वहीं रुक गया है।

धूप अभी भी तेज है। अब भीड़ में धक्का-मुक्की होने लगी है। चारों ओर पुलिस का पहरा है। सभा करने की अनुमति नहीं है। पर नेतागण अभी भी बातचीत कर रहे है। चाहे कुछ भी हो जाये सभा तो होगी ही। चाहे जितनी देर हो, सभा निश्चित है। लोगों को जमीन पर बिठाया जा रहा है।

मौका देखकर कुछ लोग गलियों से सरकने लगे। चंद्रशेखर उस जगह से उतना परिचित नहीं था। वहां से घर के लिए कौन-सी बस मिलेगी इसका भी अंदाज़ा नहीं था। यहां के लोग सिकंदराबाद निवासियों से अलग हैं। कुछ दूसरे प्रांत के वासी लगते हैं। आसपास कोई पक्का मकान, ठोस इमारत, कुछ भी नहीं। मिट्टी की दीवारें आसपास खड़ी हैं। झोंपड़ियों में और इन मकानों में कोई ज्यादा अंतर नहीं है। झोंपड़ी में शायद ज्यादा ही सुविधाएं होंगी। संकरे और छोटे-से दरवाजे, बाहर बहते गंदे नाले, उनसे उठती तीखी गंध, भौंकते-रिरियाते कुत्ते, थूथनी उठाकर चलते सुअर, मुर्गी के चूजे, बत्तख ! घरों के दरवाजे पर टाट के परदे। पता नहीं कितने जीव उन टाट के परदों के पीछे पलते होंगे। गंदगी और बीमारी वहां सामान्य बात है। पर ऐसी जगहों पर सांप्रदायिक दंगे होते हैं—घर लूटे जाते हैं, सिर फूटते हैं, संपत्ति फूंकी जाती है।

चंद्रशेखर सड़क के किनारे बैठा हुआ था। पहली पंक्ति से वह दस फुट ही पीछे

था। पहली पंक्ति के पास बेंत लिये पुलिस अधिकारी खड़े थे। पॉलिश की गयी बेंत चकाचक चमक रही थीं। काले रंग की बेंत में खून के रंग का पता नहीं लगता। उसने सोचा, क्या पता खून से ही उनकी पॉलिश बनी रहती हो!

कुछ हलचल हुई है। सारा यातायात रुक गया है। चंद्रशेखर ने सिर उठाकर पीछे की ओर देखा। पीछे कई गज की दूरी तक जुलूस की भीड़ बैठी हुई थी। उनके भी पीछे पुलिस की टोपियां, लाठियां! कौन क्या कर रहा है, कुछ समझ में नहीं आया। जुलूस के नेता कहां चले गये? जुलूस अब पुलिस वालों से घिरा टापू लगने लगा। अब भला यह शांति कितनी देर कायम रहेगी!

'फट फट' करती दो मोटर साइकिलें जुलूस की लंबाई नापती निकल गयी हैं। अब लाठी चार्ज ही बाकी है; लोगों मे हलचल मच गयी।

चंद्रशेखर ने इधर-उधर देखा। आसपास के लोग एक-दूसरे को धकियाते खड़े थे। उनमें से एक भी चेहरा पहचाना हुआ नहीं है। जुलूस जब कॉलेज से होकर निकला था, तब उसके कॉलेज के करीब पचास साथी रहे होंगे। इस वक्त उनमें से एक भी नज़र नहीं आ रहा। क्या सभी रास्ते से खिसक गये या कहीं और फंसे हैं? उफ! क्या पागलपन कर डाला है उसने। बिल्कुल अनजान जगह में कितने ही अजनबियों के बीच वह अब मार खाने वाला है।

अगली पंक्ति के लोग पुलिस वालों से बातचीत में लगे हैं। पर वे जरा इधर-उधर हुए नहीं कि पुलिस वाला डंडा दिखाकर उन्हें धमकाने लगा था। वह आगे वालों के सिर तोड़कर यदि उसके पास आ गया तो उसका क्या होगा!

एक पुलिस अफसर चिंतित-सा चेहरा लेकर जुलूस के पास आ गया। नीचे बैठे चेहरों को वह ध्यान से देखने लगा। चंद्रशेखर की आंखें एक क्षण के लिए उसकी आंखों से मिलीं। उसकी यूनीफार्म पर जाने पीतल के कितने बटन चमचमा रहे थे और अनेक रंगों की पट्टियां बनी हुई थीं। काफी अनुभवी व्यक्ति लग रहा है। हो सकता है उसके कई बाल-बच्चे भी हों। क्या पता इतनी बड़ी भीड़ में अपने बेटे को ढूंढ़ रहा हो।

सहसा दूसरा ट्रक भी वहां आ गया। दूसरी तरह की यूनीफार्म में पुलिस उस पर से उतरने लगी। बहुत से पुलिस कर्मियों के पास अपना चेहरा बचाने के लिए मास्क थे। अरे, ये तो अश्रुगैस वाले हैं। यानी अब समझौता करना होगा। या तो मार खानी होगी, या जुलूस को तितर-बितर करना होगा।

अब भीड़ में हलचल बढ़ गयी। बस यूं ही रह जाओ। चाहे जान चली जाये, यहीं बने रहो। तो क्या बच्चों पर भी लाठियां चलेंगी? ठीक है, बच्चे चले जायें! काहे जायें? पुलिस आक्रमण करे तो बस लेट जाओ, चुपचाप।

कुछ लोग रोना शुरू कर देते हैं। चंद्रशेखर के पास कई बच्चे चिल्ला रहे हैं —'मां, बाबा मुझे बचाओ !' उनकी चीखें, उनका रोना बढ़ गया है। वे स्कूल के बस्ते सिर पर रख लेते हैं। सहसा भीड़ में से कोई बोला—'रूमाल भिगोकर रख लो। अश्रुगैस तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।' पर पानी के लिए कहां जायें। मूसी नदी में भी तो एकाध पतली-सी धार ही तो बह रही है। पर वहां तक जाने के लिए दूर जाना होगा और वहां पहुंचने से पहले लाठी भी खानी होगी। वहां उतनी भीड़ में भागा कैसे जाय ! फंसे, अब तो बुरी तरह फंसे।

अश्रुगैस वाला जत्था पंक्तिबद्ध खड़ा है। चारों तरफ से पुलिस की सीटियां बज रही हैं। माइक पर उर्दू में कोई घोषणा या चेतावनी दी जा रही है। तीन मिनट का समय है। सिर्फ तीन मिनट !

जुलूस सहसा तितर-बितर होने लगा है। भगदड़ मच गयी है। कुछ लोग उन्हें रोकते हैं। पर भीड़ है कि भागने में लगी है।

चंद्रशेखर चिल्लाया,'मां' ! एक आदमी उसके कंधे को चप्पल से दबाता हुआ भागा। चंद्रशेखर भी उठकर भागने लगा।

कहां भागे वह ? उसकी समझ में कुछ नहीं आया। जुलूस के पिछले भाग में कुछ बुजुर्ग लोग भी थे। वे लोग अभी मौजूद थे। आगे पुलिस थी। सड़क के दायीं ओर भी पुलिस थी। बायीं ओर बंद दरवाजों वाले मकान। सात-आठ मकानों के बीच छोटी-छोटी गलियां हैं। वहां पहले से ही लोग भरे पड़े थे। और भी लोग वहां घुसे जा रहे थे।

गैस का पहला गोला छोड़ा गया। सहसा एक अजीब-सी दुर्गंध हवा में फैल गयी। फिर जैसे ठोस-सी कोई चीज़ आस-पास फैलने लगी। एक क्षण, केवल एक क्षण। आंखें जलने लगीं। चीख-पुकार'मां, ओ मां'-जैसी करुण आवाजें।

चंद्रशेखर पूरे वेग से गली की ओर भागा। उसकी किताबें बिखर गयीं। उसके पास इतनी फुर्सत भी नहीं थी कि वह उन्हें उठा सके। उस गली में कई लोग धक्का-मुक्की में लगे थे। क्या पता यह अंधी गली हो ? अगर वैसा हुआ, तो इतने लोग कहां जायेंगे।

पता नहीं उसे क्या सूझा उसने टाट के परदे के पीछे एक दरवाजे को धीमे-से ठेल दिया। दरवाजा खुल गया। वह भीतर घुस गया और दरवाजे को भिड़ा दिया। दरवाजे से लगा, एक छोटा-सा आंगन। आंगन में कई पिचके, काले, पुराने, अलमूनियम के बर्तन पड़े थे। नाली के पास कई मच्छर मंडरा रहे थे। दो चूजे, सहसा इधर-उधर भागने लगे। घर के भीतर एक, केवल एक आकृति। अस्थि पंजर-सी बुढ़िया, इतने गंदे काले कपड़ों में उसे देखकर, उसे जैसे मितली आ

गयी। बुढ़िया ने चीखने के लिए मुंह खोला ही था कि चंद्रशेखर ने याचना की मुद्रा में हाथ फैला दिया। बुढ़िया चुप हो गयी।

मसूद को यह नहीं मालूम। मसूद जैसे और शेरवानी पहनने वालों को भी यह बात नहीं मालूम। पर, अगले दिन, जुलूस में शामिल होने वालों को उन लोगों ने जिस दृष्टि से देखा था, वह ?'तुम लोग हमारे निजाम से टक्कर लेना चाहते हो ?' उनकी आंखों में व्यंग्य था। निजाम को चंद्रशेखर ने दो बार देखा है। निजाम की गाड़ी जब भी गुजरती, पुलिस वाले सारा परिवहन रोक देते। निजाम की गाड़ी अक्सर कहीं जाती, तो मस्जिद तक ही। सूखे काठ-सी निजाम की आकृति कार की पिछली सीट पर फैली रहती। उस निजाम को चंद्रशेखर आसानी से अपने दोनों हाथों से उठा सकता है। हिज़ एक्साल्टेड हाइनेस मीर उसमान अली खान बहादुर वगैरह-वगैरह। हो सकता है, कल वाली बुढ़िया इस निजाम की जन्म-जन्मातंर की बहन रही हो। पर क्या मुसलमानों में पुनर्जन्म होता है। नहीं ! पर वह बुढ़िया निजाम से मिलती-जुलती है। उस बुढ़िया के लिए क्या फर्क है, शासन शिवाजी करे या निजाम या फिर सम्राट अशोक ! वह भीख नहीं मांगती। पर पता नहीं कितनी पुश्तों से वह गरीबी में, गंदगी में, बदबू में रेंगती चली आ रही है। पता नहीं, और कब तक रेंगती रहेगी। फूंक मारो, उड़ जायेगी। वह एक झापड़ कस कर लगाता तो शायद मर भी जाती। पर उसने उसका साथ दिया। वरना उस दिन जिन पंद्रह लोगों की खोपड़ी टूटी, उनकी लिस्ट में उसका नाम भी शामिल रहता। लेकिन मसूद को ये सारी बातें कहां मालूम हैं।

रंगा शेक्सपीयर की खाल उधेड़ रहे हैं। जॉन ऑफ कांट का विवेक, उसकी सहनशीलता और देशभक्ति। स्वार्थी, तानाशाह सम्राट की सेवा में भी ईमानदारी। वह बड़े वंश का था –रिचर्ड का रिश्तेदार। वह चाहता तो जीवन में उसे सारी सुविधाएं मिल सकती थीं, मगर क्या उन दिनों इस बुढ़िया-जैसी और भी रही होंगी ? हां, जरूर रही होंगी। पर क्या, उनका फ्लसफा भी एक-जैसा रहा होगा ? क्या वह बुढ़िया बोल सकती है ? अगर वह बुढ़िया बोल भी सकती तो भी क्या शेक्सपीयर इसी तरह एक-एक वाक्य में चार भावार्थ समाहित करके काव्य-ग्रंथ लिखता ? शेक्सपीयर को पकड़कर हैदराबाद क्यों न लाया जाये !

उसे लगा, जैसे उसका सिर फटने वाला है। उसने सिर को कसकर दबा लिया। मसूद ने आंखें खोलीं। चंद्रशेखर को देखकर उसने आंख मारी। चंद्रशेखर ने मुंह घुमा लिया। मसूद ने चंद्रशेखर के कान उमेठ दिये। चंद्रशेखर चौंक गया।'छोड़ दो यार।' उसने कहा'गुस्सा मत करो दोस्त।' मसूद ने लाड़ दिखाया। पर फिर उसने आंख मारी, इस बार धीमे से नहीं।

पीरियड समाप्त हो गया। अब सभी को अपने-अपने वर्ग में जाना है। मसूद को पीछे छोड़कर चंद्रशेखर विज्ञान विभाग की ओर भागा। खेल के मैदान में दो दल क्रिकेट खेल रहे थे।

चंद्रशेखर ने अपने-आप से कहा, 'अब मुझे नहीं भागना है।'

10

मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मेरे 'विडुदलै' गीत की प्रतिक्रिया इतनी व्यापक होगी। यूं तो हमारे कॉलेज में तेलुगु एसोसिएशन, या उर्दू एसोसिएशन के प्रोग्राम में तिल रखने की जगह नहीं होती, जबकि तमिल एसोसिएशन के प्रोग्राम में अक्सर कुर्सियां खाली रहतीं। कुछ छात्र आकर दस-पंद्रह मिनट बैठकर चले जाते। हमारे कॉलेज में पांच-सात तमिलभाषी अध्यापक अवश्य थे, पर तमिल के पंडितजी के अलावा और कोई शामिल नहीं होती। प्रिंसिपल सभी एसोसिएशनों के अध्यक्ष थे। इसलिए वे अकेले आते। दस मिनट बैठकर चले जाते। मेरे 'विडुदलै' वाले गीत को तंबीमुत्तु ने भी सुना, यह मेरे लिए आश्चर्य की बात थी और फिर मुझे पता भी कैसे चलता। भीतर ही भीतर मैं घबराता हुआ गाता था। उस दिन जब तंबीमुत्तु ने मेरी ओर देखकर इशारा किया तो मैंने यही सोचा कि वे किसी और को देख रहे हैं। वे कैमिस्ट्री के प्रोफेसर हैं। मैंने अध्यापक वर्ग में किसी से भी निकटता नहीं रखी। मैं हमेशा अज्ञात बने रहने में विश्वास रखता था। अक्सर अपने को छिपाता रहता। पर भला कैसे छिप सकता था। अक्सर एक न एक घटना ऐसी घटती रहती कि मुझे समझ लेना पड़ता कि अज्ञात बने रहना इतना आसान काम नहीं है। तंबीमुत्तु वाली घटना भी ऐसी ही एक घटना थी। उस शाम उनके कमरे तक गया।

'आओ, आओ। तुम तमिल लड़के हो ?' उन्होंने तमिल में पूछा। फिर पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

चार महीनों तक मैं उनका छात्र रह चुका हूं। कैमिस्ट्री प्रैक्टिकल की कक्षा में हाइड्रोजन सल्फाइड का जार तोड़कर पूरी कक्षा को नाक दबाकर भागने पर विवश किया था मैंने। विज्ञान वर्ग की सबसे अच्छी लड़की के साथ प्रैक्टिकल किये हैं। एक बार खुद इन्हीं तंबीमुत्तु ने मुझे 'बेवकूफ' का खिताब दिया था। पर उन्हें मेरा सही नाम आज तक मालूम नहीं हो सका।

मैंने उन्हें नाम बताया।

'मैं नहीं जानता था कि तुम गाते हो ?' वह बोले।

मैंने अपने हाई स्कूल के प्रिंसिपल को याद किया। बात उन्होंने भी इसी तरह शुरू की थी और बाद में मुझे साड़ी पहनाकर खुद तमाशा देखा था।

'वह गीत कौन-सा है ?'

'कौन-सा गीत सर ?'

'वही, जो तुमने 'तमिल डे' पर गाया था।'

'विडुदलै वाला गीत न सर ?'

'हां, हां, क्या है वह ?'

'विडुदलै।'

'हा, तो गाकर तो बताना।'

'सर, यहां . .. .?'

'हां।'

' इसी वक्त ?'

'हां, हां क्यों नहीं, तुम्हें घर जाने में देर हो रही है क्या ?'

'हां सर, ...नहीं सर।' मैं हकलाया।

'दो मिनट की ही तो बात है। बेहद अच्छा गाना था। जानते हो ?'

'नहीं सर।'

'गाओ भाई।'

मैंने उस कमरे में रसायनविदों की आत्माओं के बीच वह गीत सुनाया। मुझे लगा जैसे गीत में रसायन भर गया है।

'इसे लिखकर तो देना।'

'यह तमिल गीत है सर।' मैंने धीमे से कहा।

'हां, हां मुझे क्या मालूम नहीं।'

'पर इसे तमिल में ही लिखा जा सकता है।'

'तो क्या तुम सोचते हो मुझे तमिल नहीं आती ?'

'नहीं सर, ऐसी बात नहीं है।'

मैंने कैमिस्ट्री प्रैक्टिकल की कापी में से एक पन्ना फाड़ा और लिखने लगा। गाते वक्त, जिन गलत शब्दों का प्रयोग करता था, उन्हें मैंने ठीक किया।

तंबीमुत्तु ने उस गाने को बार-बार पढ़ा।

'तो मैं जाऊं सर ?'

'जल्दी क्या है, बैठो।' वे बोले।

मैं खड़ा ही रहा। मुझे डर लगा कि कहीं ये गीत को छोड़कर कॉलेज की पढ़ाई के बारे में न पूछ बैठें। इस वर्ष अंग्रेजी निबंधों की पुस्तक थी, 'कवरली पेपर्स'। उसमें हनीकूंप नाम का एक पात्र है। अमीर परिवार का युवक, पर गैरजिम्मेदार, शिकारी, लड़कीबाज, पात्र विल हनीकूंप।' पता नहीं क्यों, लड़के तंबीमुत्तु को इसी नाम से पुकारते थे।

'दुबारा गाकर तो बताना।' वे फिर बोले।

'दुबारा सर ? मैं सकपकाया।

'हां भाई दुबारा गाओ।' वे बोले।

मैंने उनसे पन्ना ले लिया और गाने लगा।

इस बार मेरे साथ वे भी गाने लगे। मुझे डर लग रहा था कि हम दोनों को गाते हुए कोई और न सुन ले। फल यह हुआ कि एक-एक पंक्ति गाते समय मेरा स्वर गड़बड़ा रहा था। हम दोनों ने, जैसे-तैसे गीत समाप्त किया। तंबीमुत्तु बेहद खुश थे। संगीत की इस महाशक्ति से मैं अनभिज्ञ था।

'मैंने जिंदगी में पहली बार ¯मिल गीत गाया है।' उन्होंने जैसे आत्मस्वीकृति में कहा।

'तो मैं घर जाऊं सर ?' मैंने अधीर होकर पूछा।

'जल्दी क्या है ? क्या तुम्हें इस वक्त बस मिल जायेगी ?'

' नहीं सर, मैं साइकिल से आया हूं।'

'तो फिर रुको न। चले जाना।'

'अब मैं गाकर सुनाता हूं। बताना तो, ठीक है या नहीं।'

तंबीमुत्तु ने गाकर सुनाया। पता नहीं किस राग में विचरते रहे वे। गीत खत्म किया। मैंने उन्हें बताया था कि अन्तिम पंक्ति के बाद 'विडुदलै, विडुदलै !' तीन बार ऊंचे स्वर में दोहराना है। उन्होंने दोहराया। उनकी आंखें ऊपर जरूर गयीं मगर स्वर नीचा रहा।

गीत समाप्त करते ही, प्रसन्न मन से बोले –

'कैसा लगा ?'

'अच्छा लगा।' मैं साफ झूठ बोला था।

'देखा, मैं एक बार में ही कुछ भी सीख जाता हूं। तुमने उस रोज गाया था न, तभी से बराबर मैं इसे गुनगुना रहा हूं।'

मैं चुपचाप खड़ा रहा।

'यह गीत है किसका ?' उन्होंने पूछा।

'भारती का।' मैंने कहा।

'कौन ?'

'सर, भारती का।'

'कौन हैं वे ? इस समय जीवित हैं क्या ?'

उस वक्त भारती के बारे में मेरा ज्ञान इतना ही था कि उनकी जन्म-भूमि एट्टयपुरम् में उनका स्मारक बनवाने के लिए 'कल्कि' पत्रिका ने चंदा इकट्ठा करवाया था। पिताजी ने भी चंदा इकट्ठा किया था। उनका नाम भी छपा था। बीसवीं शती के तमिल साहित्य के बारे में हमारा ज्ञान, 'आनंद विकटन' और 'कल्कि' पत्रिकाओं तक ही सीमित था। तंबीमुत्तु जैसे लोगों के लिए तो वह ज्ञान भी शून्य था। पता नहीं, वे हैदराबाद में कब से रहते हों।

हिंदुस्तान की आजादी के समय हम दोनों, इस गीत के माध्यम से उसे अंजलि दे रहे थे।

'बहुत अच्छा गीत है। अगर तुमने गाया नहीं होता तो, मुझे इसके बारे में पता तक न चलता।' वे अफसोस भरे स्वर में बोले।

'मुझे एक-दो गीत और भी आते हैं सर। मैं तो उनमें से कोई गीत गाने की बात सोच रहा था। पर वे तो बड़े गीत हैं।

'मुझे सिखाओगे ?'

'चलो, किसी और दिन सही। पर हां देखो . .. ।'

'क्या बात है सर ?'

'किसी को बताना मत।'

मैं समझ नहीं पाया।

'यही कि मैंने गीत सीखा है।'

'ठीक है सर।'

तभी मैंने एक बेवकूफी की। बोला, 'इसे तेलुगु वाले भी सीखना चाहते हैं, सर।'

'अच्छा ? कौन-कौन हैं ?'

'नरसिंह राव।'

'कौन नरसिंह राव ?'

'ए बैच का छात्र सर। कांग्रेसी लीडर।'

कांग्रेस का नाम लेते ही उनके चेहरे पर मुर्दनी छा गयी।

'उनसे मिलना मत।'

'बस यही तो नहीं हो पाता सर।'

तंबीमुत्तु सहसा तन गये।

'देखो चंद्रशेखर, तुम तमिल लड़के हो, इसीलिए कह रहा हूं। तुम यह सब छोड़ दो।'

'पर मैंने तो हस्ताक्षर भी कर दिये हैं सर।'

मैंने अंगूठा दिखाया।

'क्या कहा।'

'हम लोगों ने खून से हस्ताक्षर किये हैं सर।'

'व्हाट नानसेंस ?'

मैं सतर्क हो गया। 'मैं जाऊं सर !'

मैं खिसकना चाहता था।

'यह कैसा हस्ताक्षर है ?'

मैं चुप रहा। तंबीमुत्तु ने डपट दिया।

'बोलो, बोलते क्यों नहीं ? कैसा हस्ताक्षर ?'

'मैंने शपथ ली है सर।'

'कैसी शपथ ?'

मैं चुप रहा। अब वे विडुदलै वाला गीत नहीं गायेंगे।

तंबीमुत्तु उठ खड़े हुए।' 'कैसी शपथ, बोलते क्यों नहीं ?'

'दिसंबर की पहली तारीख को कॉलेज के सामने धरना देंगे सर।'

'गेट आउट, गेट आउट।'

मैं जल्दी से बाहर निकल आया। मैं दरवाजे से बाहर आने ही वाला था, कि उन्होंने बुलाया।

'चंद्रशेखर।'

मैं मुड़ा।

'यहां आओ।'

मैं दुबारा उनकी मेज के पास गया। उन्होंने दरवाजा अंदर से बंद किया। कमरे में अंधेरा छा गया।

'मुझे पूरी बात बताओ।'

मैं जिद के कारण खड़ा था। वे इसे समझ गये।

'देखो चंद्रशेखर, तुम्हारे बिगड़ने से मुझे कोई सुख नहीं होगा। कोई कुछ भी करे। अगर इस बार हड़ताल हुई तो समझ लो रस्टीकेशन ही होगा !'

मैं इतना तो जानता था कि रस्टीकेशन एक प्रकार का दंड है पर कैसा दंड है, यह तो मैं नहीं जानता था।

'मुझे बताओ। शायद बाद में तुम्हारे काम आऊं।'

मेरी जिद टूट गयी । मैंने बताया कि कैसे मैं नरसिंह राव के साथ हैदराबाद कांग्रेस के अध्यक्ष से मिला । कैसे मैंने छात्रों में नोटिस बंटवाया ।

'है तेरे पास वह पर्ची ?'

'नहीं सर ।'

'क्या लिखा है उस पर्ची में ?'

दिगंबर राव बिंदु नाम के व्यक्ति ने दिल्ली में वल्लभभाई पटेल से बात की है । पता नहीं, किसकी प्रेरणा से । उनका अनुरोध है कि हैदराबाद के छात्रों को निजाम और रजाकार के खिलाफ आवाज उठानी है । पहले तो शपथ लेनी होगी । दो पृष्ठ के नोटिस पर खून से हस्ताक्षर करने होंगे । मेरी उंगली में काफी खून आ गया था, तो कई लोगों ने मेरे खून से हस्ताक्षर किये हैं । मगर ये हस्ताक्षर इतने साफ नहीं हैं । खून से लिखना बेकार है । हस्ताक्षर में सफाई ही नहीं रहती ।

तंबीमुत्तु गंभीर बने बैठे रहे ।

'तो क्या इसमें लड़कियां भी हैं ?' उन्होंने पूछा ।

'हैं तो सर । पर अपने कॉलेज की नहीं ।'

'क्या, तुमने लड़कियों की वजह से इसमें भाग लिया है ?'

'ऐसी कोई बात नहीं सर ।'

तंबीमुत्तु फिर खड़े हुए ।

'देखो चद्रशेखर, मैं वचन देता हूं । मैं किसी को नहीं बताऊंगा ! पर एक बात ध्यान में रखना । इससे तुम्हारा कुछ भला नहीं होने वाला । आदर्शवाद अच्छी चीज है । क्या तुम सोचते हो, मैं आदर्शवादी नहीं ? मैंने तुमसे यह गीत भी इसलिए सीखा था कि मुझे इसके भाव पसंद आये । पर यहां, यह सब नहीं चलेगा । अब मुझे ही लो । बीस साल की सर्विस हो गयी, इसी कॉलेज में । एक साल इंगलैंड जाने की छुट्टी मांगी । कहा गया, नौकरी छोड़ दो । पता नहीं, कब का वाइस प्रिंसिपल बन चुका होता । पर सड़ रहा हूं अब तक । मैं अगर किसी छात्र की छात्रवृत्ति की सिफारिश करूं, तो उसे नहीं दी जाती । यहां या तो लाल टोपी वाले की पूछ है, या फिर पगड़ी वाले की । मेरी तरह नंगे सिर वाले, खोपड़ी फोड़ते रहते हैं ।'

कैमिस्ट्री के सर भी इतनी साफ भाषा बोल सकते हैं, मुझे आश्चर्य हुआ ।

'चंद्रशेखर देखो, जमाना खराब है । तुम्हें अच्छा लगे न लगे, यहीं पढ़ो और बने रहो । यहां के छात्रों को बाहर न कोई पूछता है, न नौकरी मिलती है । मर्जर से या यूनियन से कुछ नहीं होने वाला । मैं खूब जानता हूं । हैदराबाद वाले को पूछता कौन है ? अभी तक तो सब कुछ वैसा ही है, अब क्या बदल जायेगा । पहले गोरे लाट थे, अब गांधी टोपी वाले होंगे । हमारे लिए तो दोनों एक ही हैं । हम लोग, पता नहीं,

कैसे यहां रहने चले आये। अब सुख हो या दुख यहीं रहना बेहतर है। अब कहां भाग सकते हैं ?'

मुझे लगा, तंबीमुत्तु बस रो देंगे। मैं जब उनके कमरे से बाहर निकला तो अंधेरा घिर आया था।

तंबीमुत्तु ने पीछे से पूछा, 'उंगली ब्लेड से काटी है न, तो आयोडिन लगाया है कि नहीं ? वरना, सेप्टिक हो जायेगा। ध्यान रखना।'

11

'हिंदू' का प्रकाशन फिर से शुरू हो गया। सोम सुंदरम लाइब्रेरी से एक शाम, एक आदमी ढेर सारे अंक दे गया। कम से कम दस दिनों के अखबार होंगे। छः बजे, दरवाजे बंद हो गये। अगले दिन जब वह लाइब्रेरी गया, तो वहां केवल एक दिन का अंक पड़ा था।

चंद्रशेखर ने उस अंक पर सरसरी निगाह डाली और बाहर आ गया। एक महीने का सिर्फ चार आने चंदा देना पड़ता है। उसने डेढ़ महीने पहले चंदा जमा किया था। पर आज भी वह आदमी कुछ नहीं बोला। अगर वह 'हिंदू' के और अंक मांगेगा, तो वह शर्तिया चवन्नी धरवा लेगा।

'हिंदू' में ही क्रिकेट का स्कोर ठीक देते हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' में शीर्षक बड़े होते हैं, पर समाचार छोटे। निजाम और उसकी सल्तनत पर अक्सर कोई न कोई आलोचनात्मक चर्चा रहती। अब वह पत्र तो यहां नहीं आता। अब जब 'हिंदू' पर भी रोक लगा दी जायेगी तो बस स्थानीय पत्रों का ही भरोसा रह जायेगा। 'दक्कन क्रानिकल', 'हैदराबाद बुलेटिन', 'डेली न्यूज' तीनों ही तीन-चार पृष्ठों के पत्र हैं। वह भी छोटे आकार के पृष्ठ। क्रिकेट का स्कोर भला वे कहां छापेंगे।

चंद्रशेखर किंग्सवे में साइकिल धकेलने लगा। कल की बारिश के कारण शहर ठंडा हो गया है। पिछले दस-पंद्रह दिनों से ही शहर में ठंड पड़ने लगी है। निजाम और हिंदुस्तान की सरकार के बीच अनुबंध तय हो गया है—'स्टैंड स्टिल एग्रीमैंट'। यह तो पूरे साल भर के लिए है। हिंदुस्तान की सरकार का सिरदर्द कम हो गया होगा। पर और भी तो कई सिरदर्द हैं। जैसे, कश्मीर, दिल्ली में शरणार्थी, महात्मा गांधी की भूख हड़ताल।

ऊपर से हिंदुस्तानी क्रिकेट टीम पहली बार आस्ट्रेलिया गयी है। पर्थ का मैच तो बस यूं ही था। एडिलेड के मैच में ब्रैडमैन ने शतक बनाया। हिंदुस्तानी टीम में अमर नाथ ने एक सौ चवालीस रन बनाये। डूलैंड की गेंद पर साकर्स ने स्टंप आउट कर दिया। वही चित्र 'हिंदू' में प्रकाशित हुआ था। चित्र में अमर नाथ और साकर्स

दोनों हंसते हुए दिख रहे हैं। अगला मैच मैलबर्न में था। अमर नाथ दो सौ अट्ठाइस नाट आउट। फिर सिडनी में हिंदुस्तान हार गया। मनकड ने आठ विकेट लिये। उसके बाद ब्रिसबेन के मैच में अमरनाथ ने एक सौ बहत्तर रन बनाये। हिंदुस्तान में ही नहीं आस्ट्रेलिया में भी लाला की ही चर्चा थी। पर हैदराबाद के समाचारपत्रों में ये चर्चाएं कहां ? उनके लिए तो हिंदुस्तान विदेश है। हिंदुस्तान की टीम में हैदराबाद का एक भी खिलाड़ी नहीं है। गुलाम अहमद को शामिल करते तो अच्छा होता। ई. बी. आइवारा को भी ले सकते थे। अरे कुछ नहीं तो तमिलभाषी भूपति को ही ले लेते। पर ऐसा नहीं हुआ। लिहाजा 'हिंदू' से ही सारे समाचार मिलते। बाहर से पत्र आते रहें, तो ठीक है। कल का पत्र यहां आज तो देखा जा सकता है। मद्रास से हैदराबाद तक आने के लिए एक दिन और एक रात का सफर करना पड़ता है। कई लोग, इसी तरह हैदराबाद से बाहर चले गये।

चंद्रशेखर साइकिल अभी तक धकेल ही रहा था। आजकल दोपहर में भी बाजार में लोगों की भीड़ कम ही रहती। इसी तरह अक्सर घरों में भी ताले देखे जा सकते हैं। पहले कुछ परिवार दस मील दूर बोलाराम में आकर बस गये। वहां पर तैनात हिंदुस्तानी सेना अब इस 'स्टैंड स्टिल एग्रीमैंट' के तहत, वापस जा रही है। अत: अब बोलाराम काफी सुरक्षित जगह है। पर निजाम अब भी तीन बार मस्जिद जाते हैं। पुलिस वाले अब भी सीटियां बजाकर पूरा यातायात रोक देते हैं। रजाकार भी अपनी मर्जी कर रहे हैं। पता नहीं, लगता है, शायद हिंदुस्तान की सरकार कुछ भी नहीं बिगाड़ पायेगी। हैदराबाद सरकार यूं ही बनी रहेगी।

आर्य भवन होटल के सामने भी तीन-चार साइकिलें ही खड़ी हैं। सिकंदराबाद भर में, केवल यही एक होटल है जहां ढंग का इडली-डोसा मिलता है। पर यह भी डेढ़ वर्ष पहले ही खुला है। दो इडली सांबर और कॉफी के सिर्फ चार आने ही पड़ते हैं। लाइब्रेरी के लिए भी वही चवन्नी। पर सिक्का काश हिंदुस्तानी होता ! या बरतानवी होता, तो मैटनी जा सकते थे। पर आजकल उसे हिंदुस्तानी सिक्का कहना ही बेहतर है। आज भी स्कूलों में हिसाब इसी तरह लगाया जाता है। 'यदि सौ हिंदुस्तानी रुपये एक सौ सोलह हैदराबादी हाली रुपये और दस आने, आठ पैसे के बराबर हों, तो तीस हिंदुस्तानी रुपये में कितने हैदराबादी हाली रुपये होंगे ?'

चंद्रशेखर ने अपनी पतलून की जेब टटोली। उसकी अधन्नी अभी भी बची है। जब से कॉलेज जाना छूटा, पैसे को देखा तक नहीं। यह अधन्नी भी पता नहीं कब की पड़ी है।

वह घर पर ही पड़ा रहा, तो शुरू-शुरू में मां ने खोद-खोदकर पूछा। उस दिन तो वह टाल गया। पर तय था कि एकाध दिन में पिताजी जरूर पूछेंगे। इसी बीच शहर

में एक बार फिर दंगा हो गया। अस्सी लोग घायल हुए। दस से अधिक लोग मारे गये। सभी कॉलेजों में छुट्टियां हो गयीं। हफ्ते भर तक छुट्टियां रहीं। इसी बीच 'स्टैंड स्टिल एग्रीमैंट' की घोषणा की गयी। दरअसल यह एग्रीमैंट है क्या, उसके परिणाम क्या होंगे, कोई नहीं समझ पा रहा। हिंदुस्तानी सरकार निजाम की कार्रवाइयों में दखल नहीं देगी। निजाम सरकार भी हिंदुस्तानी सरकार की कार्रवाइयों में दखल नहीं देगी। पर भला निजाम दखल देंगे क्यों ! वह तो यही चाहता है, कि कोई भी उसके मामलों में दखल-अंदाजी न करे। इस समय सब उसकी इच्छानुसार ही हो रहा है। अब यह मुस्लिम राज्य ही बना रहेगा। पता नहीं कितने वर्षों से यह यूं ही रहा है। पर उस समय कोई किसी का दुश्मन नहीं था। कोई अपनी जान बचाने नहीं भागा। पर अब ? अब सभी जैसे सहमे-सहमे जी रहे हैं। सहसा यह सवाल जाने कहां से उठ खड़ा हुआ है कि कौन किस मिट्टी के प्रति प्रतिबद्ध है। अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध करना भी जरूरी है। इसके लिए पार्टी में शामिल होना होगा। किसी दूसरी पार्टी को अपना दुश्मन बनना होगा। सदियों से कई निजाम शासन करते आ रहे हैं, किसी को भी नारों की जरूरत नहीं पड़ी। आजाद हैदराबाद जिंदाबाद !

किंग्सवे के पास टीले तक आ गया। बाईं ओर मुड़ जाये तो मोंडा की वह जगह आ जायेगी जहां उसने मार खायी थी। साइकिल पर चढ़ जाये, तो गड्ढे में तेजी से साइकिल चलाकर सीधे बाइबिल हाऊस तक पहुंचा जा सकता है। दायीं ओर मुड़े, तो रानीगंज पहुंच जायगा। चंद्रशेखर ने रानीगंज की ओर साइकिल बढ़ायी। जेम्स स्ट्रीट पहुंचकर उसके आगे नल्लकुट्टा के पास पहुंच गया। एक मकान के सामने उसने साइकिल रोक दी। केवल सलवार-कुरता पहने एक लड़की ने दरवाजा खोला। 'पिताजी हैं क्या ?' उसने पूछा। लड़की ने कोई जवाब नहीं दिया। वह भीतर चली गयी। चंद्रशेखर घुसा।

बैंत की कुर्सी पर सैयद अधलेटे पड़े थे। 'आओ बेटा', चन्द्रशेखर को अपने पास बुलाते हुए बोले। चन्द्रशेखर पास आकर खड़ा हो गया।

'बैठो, रोटी खाओगे ?'

'नहीं। पिताजी ने आपको घर बुलाया है।'

'तो फिर चाय पीयो। मैंने कहा, बेगम ! थोड़ी-सी चाय तो बना देना।'

सैयद की पैदाइश कडलूर की थी और वह पले-बढ़े मायवरम में। फिर यहां आकर बस गये। साठ बरस के बाद यहां आकर जब से बसे हैं, उर्दू ही बोलते हैं।

'हां तो बताओ, पिताजी ने क्यों बुलवाया है ?'

'नहीं जानता मामू, कल कहा गया था, पर आज ही मौका लगा आने का।'

'कल काहे नहीं आये। कॉलेज गये थे क्या ?'

'नहीं मामू, कॉलेज बंद हैं।'

'देखा, ये कांग्रेसी कितनी बदमाशी कर रहे हैं। देखो तो, कॉलेज के लौंडे मार खा रहे हैं! अरे, तुमने तो मार नहीं खायी ?'

'पुलिस वालों ने दो बार पीछा किया। पता नहीं, पिताजी ने आपको बताया या नहीं, मुझे सिकंदराबाद में ही दो रजाकारों ने पीटा है।'

'रजाकार ? भला ऐसा कैसे हो सकता है ? वे तो बेचारे गऊ हैं। कांग्रेस वालों से छिपते फिरते हैं। पता नहीं कितने घर जला डाले हैं, इन कांग्रेसियों ने। पता नहीं, कितनी दुकानें लूटी हैं। इससे भी ज्यादा, औरतों की इज्जत खराब की है। कितनी जनानियों के बुरके फाड़े हैं, कुछ खबर भी है तुम्हें ? अरे, इनकी अक्ल क्यों मारी गयी है! निजाम ने कितना सुख दिया है। अरे इन्हें तो कुत्ते की तरह तलवे चाटने चाहिए थे। वो तो दूर, दंगा-फसाद अलग कर रहे हैं। निजाम की रियासत से बाहर निकलकर तो देखो, कहीं है इतना चैन और आराम ? न चावल, न चीनी। अरे, चूल्हा फूंकने को लकड़ी तक नहीं, कपड़े भी नहीं। जो मांगो, राशन में। मैं तो रहा हूं न, मद्रास में। एक भी ढंग की पक्की सड़क नहीं। एक भी बस नहीं, चिट्ठी-पत्री का कोई ठीक हिसाब नहीं। यहां की बस देखो! और इन कांग्रेसियों को चाहिए भी क्या ? यहां काम करने वाले आधे से अधिक तो हिंदू हैं, और क्या लेंगे ? जान ?'

पर यहां की आबादी में पिचहत्तर प्रतिशत हिंदू ही तो हैं मामू! आप न भी चाहें, उन्हें नौकरी पर लगना ही होगा।'

'अरे, तो मुसलमान नहीं मिलेंगे क्या ? यहां कितने भिखमंगे मुसलमान हैं, मालूम है ? कितने लोग दो जून रोटी के लिए तरस रहे हैं ? आज बाहर से कितने आये पड़े हैं। अबे, बोल तो। तू क्यां कांग्रेसी है ? बाप की इज्जत धूल में मत मिला देना। बोल तो, कांग्रेसी है क्या तू ?'

'अब यहां कांग्रेस कहां रही मामू ? उसे तो खत्म कर दिया गया है और नेता लोग जेलों में ठूंस दिये गये हैं।'

'गुंडे हैं पूरे। सारा शहर बिगाड़ रहे हैं। काहे को छोड़ा है उन्हें। इन्हें तो कोल्हू में पिसाना चाहिए। मेरी मान, तू अक्ल से काम ले।'

'तो फिर आप कब आ रहे हैं, मामू ? आज आयेंगे ?'

'आज तो नहीं आ सकता। आज मेरी परेड है।'

'मिलेट्री परेड है क्या ?'

'मिलेट्री नहीं सिविल वालंटियर्स। तुम भी भरती होना चाहते हो! चलो, मैं करवा देता हूं। पर, तुम्हें ट्रेनिंग नहीं मिलेगी।'

'नहीं मामू, रहने दीजिये ।'

'ठीक तो है, तुम लोगों के लिए काहे की ट्रेनिंग । अरे हम लोग जो जान दे रहे हैं ।'

'मैं चलता हूं, मामू ।'

'चाय तो पीते जाओ । तेरे लिए खास बनवायी है । बेगम सुनती हो ! तैयार हो गयी क्या ?'

चाय बेहद खराब थी । इतनी पतली चाय चंद्रशेखर ने पहले कभी नहीं पी थी । सैयद को हैदराबाद वालों की तरह चाय तक बनानी नहीं आयी ।

चंद्रशेखर जब सैयद के घर से बाहर निकला, तो उनका बड़ा लड़का भीतर आया । चंद्रशेखर को देखकर वह मुस्करा दिया । लगा, जैसे वह किसी विपत्ति का मारा हो । सैयद का-सा तीखापन और उत्साह इसमें नहीं था । इसके शायद दोस्त भी न हों । पिताजी का विश्वास भी शायद बेटों को आश्वस्त नहीं कर पाया था । वह मायवरम और कडलूर में रहते इतना निरुत्साहित कतई नहीं होता । चेहरे पर रौनक थी । रौनक ! कितने लोग इस शब्द का प्रयोग करते हैं, पर उसे आज तक इसका मतलब कभी समझ में नहीं आया ।'तुम्हारे चेहरे पर रौनक नहीं है ।' अक्सर लोग कहते । वह समझ नहीं पाता । अब सैयद के बड़े बेटों के देखकर बात समझ में आ गयी । कल यह भी परेड में शामिल होगा । इसके पिता इसे घसीटकर ले जायेंगे । यह भी अठारहवीं सदी के राइफल लेकर परेड करेगा । सैयद पिताजी के दोस्त हैं । पता नहीं पिताजी क्या सोचते होंगे ? पर सैयद पिताजी को अभी भी तंजौर जिले के किसी गांव का स्कूली छात्र ही समझते हैं ।'कांग्रेसियों की लूट-पाट देखी ?' वे अक्सर पूछते । सैयद को पिताजी पर इतना अधिक विश्वास था कि वे अक्सर यही सोचते कि पिताजी भी उनके-जैसे ही विचार रखते हैं । पर क्या इस हैदराबाद में ऐसा कभी संभव है ? हो भी तो, क्या परिणाम एक-से होंगे । जब परिणाम अलग होंगे, तो फिर दोनों के विचार कैसे एक हो सकते हैं !

सैयद का बेटा नासिर अली खां, मसूद की उम्र का ही होगा । पर वे लोग, इस परिवेश में भी, सहज ही रहे हैं । नासिर अली खां के पिताजी पुलिस अधिकारी हैं । पता नहीं, कितनी सदियों से उनके खानदान का नाम है । पर पता नहीं, विपत्ति के समय वे कैसे रह सकेंगे । लेकिन इस समय स्थिति निश्चय ही संतोषजनक नहीं है । पर वे अपनी मायूसी जाहिर नहीं होने देते । वे बातें तो करते हैं, पर राजनीतिक चर्चाएं कभी नहीं करते । तीखेपन का तो नामोनिशान नहीं है । दो दिन पहले भी नासिर अली खां ने कहलवाया था । आने वाले रविवार को शायद मैच था, उसी के लिए बुलवाया था । वह तो आजकल कॉलेज ही नहीं जाता है, मैच खेलने भला क्या जायेगा । हां , सुंदरसिंह जरूर जायेगा । उसे किसी तरह की परेशानी नहीं है ।

परेशानी तो खास सोचने से ही होती है। वह आज के हालात के बारे में सोचता तक नहीं। जहां तक उसका सवाल है, वह छात्र है। अंग्रेजी पढ़ता है, क्रिकेट खेलता है। बुलबुलतारा बजाता है। ईरानी होटल में जाकर कुछ भी खा सकता है। इतवार के दिन टाई कोट पहनकर चर्च जा सकता है। वह चर्च जाता ही इसलिए है, कि अपने अच्छे कपड़ों का प्रदर्शन कर सके। मॉरिस उससे एक हाथ आगे है। ये ईसाई हमेशा की तरह खुश, बेफिक्र होकर घूम रहे हैं। काश वह खुद भी ईसाई होता। तब कम से कम खुश तो रह पाता।

चंद्रशेखर रानीगंज पारकर नल्लकुट्टा की एक गली में आकर रुक गया। वहां पांच-छ: घरों के दरवाजे शायद कई दिनों से बंद पड़े होंगे। उन पर कोयले से, और खड़िया से कई नाम और नारे लिखे गये थे। बच्चों का काम होगा। एकाध चित्र भी बने थे। कहीं पेड़, कहीं लताएं, कहीं आधा चांद। पूरा चांद नहीं। इनका झंडा ही आधे चांद का बना है। ऐसी गली में, केवल नरसिंह राव का ही घर खुला था। पर कई किरायेदार गायब हो गये थे। एकाध अब भी बचे रह गये थे। चंद्रशेखर ने आवाज दी, 'नरसिंह राव ! नरसिंह राव !'

एक अधेड़ उम्र की औरत बाहर आयी। चंद्रशेखर ने उससे तेलुगु में पूछा, 'नरसिंह राव है क्या ?'

उस औरत ने 'नहीं' का इशारा किया। नरसिंह पिछले दस-बीस दिनों से ही गायब है। कालेज बंज होने के पहले ही वह नहीं दिखा था। बस, एक दिन चंद्रशेखर सहित पंद्रह लोगों को ले गया था और खून से हस्ताक्षर करवाये थे। हस्ताक्षर भी करवा लिये, कॉलेज जाने से मना भी कर दिया ; अब आगे क्या किया जाये ! कब तक इसी तरह रहा जाये ? सब ठीक हो जायेगा क्या ?

'कब लौटकर आयेगा ?' चंद्रशेखर ने उस औरत से पूछा।

'नहीं जानती।'

'यहीं है न, वह ?'

'मुझे नहीं मालूम।' उसने तेलुगु में जवाब दिया।

चंद्रशेखर ने दोबारा कहा, 'मैं उसका दोस्त हूं। हम दोनों एक ही क्लास में पढ़ते हैं।'

कोई जवाब नहीं आया। एक बच्चे ने आकर दरवाजा बंद कर दिया। चंद्रशेखर कुछ देर यूं ही खड़ा रहा, फिर चल दिया। खिड़की के परदे को थोड़ा-सा सरकाकर एक आंख लगातार उसे घूरे जा रही थी। उसे लगा, वह आंख नरसिंह राव की है।

12

दंगों के बाद दुबारा स्कूल-कॉलेज खुल गये । अर्द्ध-वार्षिक परीक्षाएं और फिर सिलेक्शन एग्जाम के बाद बस क्रिसमिस की छुट्टियां ही बाकी हैं । पानी भी, अब कम ही बरसता है । धूप अब कुछ तेज होने लगी है । सुबह के वक्त अब कोहरा छाने लगा है । हुसैन सागर इस वक्त शांत है । टैंक बंड की हवा अब उतनी तेज नहीं चलती । इन महीनों में दोपहर में एक मील चल लेना भी सुखद लगता है । मिर्जा इसमाईल पहले निजाम के वजीर रहे, फिर उन्होंने इस्तीफा दे दिया । चट्टारी नवाब भी भगा दिये गये । अब लायक अली ही वज़ीर है । चट्टारी नवाब के महल में रजाकारों ने हुड़दंग मचाया है । कारण सिर्फ इतना है कि चट्टारी नवाब ने उनके नारों को उत्साहित नहीं किया । फिर महल के भीतर घुसकर प्यार और लाड़ से पाली गयी नवाब की मूंछ के एक हिस्से को हाथों से उखाड़ दिया । नवाब ने जब इस्तीफा दिया, तो निजाम ने धन्यवाद का एक शब्द तक नहीं कहा । पर लायक अली के साथ वैसा नहीं होगा । उसकी तो मूंछें ही नहीं हैं । उससे भी अधिक, वह कासिम रिज़वी का खास आदमी है । लायक अली ने अभी टैंक बंड पर ध्यान नहीं दिया है । मिर्जा इसमाईल के जमाने से वह वैसा है । खैर, अब पता लगता है कि इसमाईल ने जो काम किये हैं, वह कितने महत्वपूर्ण हैं । सच, यह तट अब कितना खूबसूरत लगने लगा है । मिर्जा को यह कतई पसंद नहीं आया कि एक दीवार, छोटी सही, सारे दृश्य की सुंदरता खत्म करे । उसने दीवार ढहा दी और लोहे के छोटे खंभे गाड़कर, जंजीर से उन्हें बांध दिया है । ऊंची बाल्कनी को तोड़कर, उसे सड़क के समतल पर लाकर बाल्कनी बनवा दी है । यानी सड़क पर चलता-चलता आदमी चाहे तो किसी भी बाल्कनी में घुसकर दृश्य का जायजा ले सके । ये सब, हालांकि छोटी-छोटी बातें हैं, पर इनसे पूरे टैंक बंड का रूप निखर आया है । चंद्रशेखर ने साइकिल बाल्कनी के पास रखी और पूरे दृश्य को भरपूर नजरों से देखा । हैदराबाद बोट क्लब की इमारत, जहाज के अगले भाग की तरह बनायी गयी थी । उसके पीछे उस्मानिया टेक्नीकल इंस्टीट्यूट है । पर उसकी इमारतें अठारहवीं सदी की इमारतों की तरह, गुंबद वाली

हैं। झील के तट को यहां से साफ देखा जा सकता है। झील के उस पार कुछ बंगले हैं। उनके पीछे बंजारा हिल्स। दायीं ओर, झील से निकाले गये नाले के ऊपर एक रेलवे पुल। यहां खड़े होकर अगर सुना जाये, तो पुल पर रेल के गुजरने के दो मिनट बाद ही उसकी आवाज यहां तक पहुंचती है। वैसे आवाज़ की गति क्या है ? एक सैकेंड में एक हजार फुट। चार सैकेंड में चार हजार फुट। यानी करीब पौन मील। तो, यह पुल यहां से पौन मील दूर है।

चंद्रशेखर उस पुल को, उस पार के पेड़ों को, छितरे हुए बंगलों को, सबसे अधिक मेघाच्छन्न आकाश को देखता रहा। जब तक वह कॉलेज जाता रहा, कितनी बार यूं खड़े होकर, यहां के दृश्य को देखना चाहा पर कभी संभव नहीं हो पाया। पर अब कॉलेज बाकायदा चल रहा है। पर वह नहीं जा रहा। टैंक बंड में वह कुछ देर बिता सकता है।

पर ऐसे कब तक चलेगा। इस नरसिंह राव के बच्चे ने खून से हस्ताक्षर करवा लिये। और तो और, दो-चार लड़कों ने उसके खून से हस्ताक्षर कर लिये। 'क्विट कॉलेज मूवमेंट' (कॉलेज छोड़ो आंदोलन) अंग्रेजी माध्यम वालों के लिए ले दे कर यही तो एक कॉलेज है। उसे भी छोड़ दो। पर अब क्या होगा। नरसिंह राव के घर जाओ, तो घर पर होते हुए भी वह भगा देता है। इसी पर भरोसा करके तो उसने हस्ताक्षर किये हैं। अब क्या होगा ? खून पानी से भी अधिक गाढ़ा है। स्याही से भी गाढ़ा तो होगा ही। उसे कैसे कोई नकार सकेगा ?

टैंक बंड पर यातायात सामान्य रूप से चल रहा था। निजाम सरकार द्वारा खरीदी गयी नयी डबल डेकर बसें, आराम से जैसे फिसलती हुई जा रही हैं। पर पुरानी बसें ! तरह-तरह के धुएं छोड़ती हुए जा रही हैं। नयी बसों में तो मोटर की आवाज तक नहीं आती। क्या सैयद इसी की चर्चा कर रहे थे ?

चंद्रशेखर साइकिल पर सवार हो गया। साइकिल, हैदराबाद की ओर मुड़ गयी। कॉलेज में तीसरा पीरियड चल रहा होगा। इसके बाद, दोपहर के खाने की छुट्टी। टेबिल टैनिस खेलने वाले जल्दी-जल्दी खाना खत्म कर सालारजंग हॉल की ओर भागते हैं। टेबिल टैनिस का टूर्नामेंट शुरू हो चुका होगा। अगर वह भी कॉलेज जाता होता तो जरूर इसमें शामिल होता। विज्ञान विभाग में टेबिल टैनिस खेलने वाले कम हैं। खेल-कूद, नाच-तमाशा कला विभाग के छात्रों के लिए ही सुरक्षित था। इतिहास विभाग की लड़कियां मैच देखने आ जातीं। डायमंड सेट आता। मिस तारापुरवाला, मिस आनंद राव, मिस नायडू। मिस तारापुरवाला, नीले रंग की बड़ी फोर्ड डीलक्स कार में ही आती है। पूरे प्रदेश में, इस मॉडल की बस एक ही कार और है जो अब्दुल कादर एंड संस के सामने खड़ी रहती है। अब्दुल्ल कादर एंड संस

सिकंदराबाद की बड़ी दुकान है। हैदराबाद में भी उनकी दुकान है। इसके अलावा, फतह मैदान के पास एक आइसक्रीम पार्लर भी है। वहां आइसक्रीम के साथ एक बिस्कुट भी होता है। पट्टी की तरह एक बिस्कुट। दांत से काटो तो परतें निकलती हैं। ऐसे परतदार बिस्कुट उसने और कहीं नहीं देखे। एक आइसक्रीम अठन्नी की। डायमंड सेट, रोज आइसक्रीम खाती हैं। वैसे, एक बात है, चाहे कुछ भी हो, इस मिस तारापुरवाला को एक नजर देखने के लिए कॉलेज जाना जरूरी लगता है। कैसा रेशम-सा बदन है ! गर्दन की नसें तक दीखती हैं। रिमलेस चश्मा। टेबिल टैनिस टूर्नामेंट में मिक्सड डबल्स की पार्टनर आराम से बन सकती है। पता नहीं कितने लोग प्रतियोगिता में हैं। उससे आज तक कभी बातें नहीं हुईं। धत्, यह मैथ्स, फिज़िक्स और कैमिस्ट्री में बार-बार लक्ष्मण राव, सुंदरसिंह या तंबीमुत्तु की शक्लें ही मिलती हैं। तंबीमुत्तु सहसा तमिल गीत गाना चाहते हैं। अरे, अच्छी-भली प्रोफेसरी है, कैमिस्ट्री की। उसे तो छोड़ दिया, कहां गाने वाले के चक्कर में फंस गये। चाहें तो, अवकाट रोज़ हाइपाथिसिस को और पीरियॉडिक टेबिल को ही गीत में गा दें। पद्मा शिवराव, बेचारी बेहद सीधी लड़की है। दो दिन आयेगी तो चार दिन गायब। क्या पता वह भी क्विट कॉलेज मूवमेंट में शामिल हो गयी हो। पर क्या एक अकेली पद्मा शिवराव के कॉलेज न आने से, निजाम हैदराबाद को हिंदुस्तानी यूनियन के साथ मिलाने को तैयार हो जायेंगे ?

टैंक बंड के बाद चंद्रशेखर बायीं ओर मुड़ गया। बशीर बाग की ओर उसने साइकिल बढ़ायी। बस, दस मिनट और वह कॉलेज के पास पहुंच जायेगा। पर वहां जाकर क्या करेगा वह। बस, हाथ में बांधकर लायी गयी पूड़ियों को कहीं कोने में बैठकर खा लेगा। पर कोई देख ले तो क्या करेगा। बातें तो करनी ही पड़ेंगी। वहीं से क्या वह क्लास में चला जाये। पर खून तो स्याही से गाढ़ा है न ?

चंद्रशेखर फतह मैदान के तिराहे के पास आया। सामने के कॉलेज में न घुसकर पेड़ के पास से निकलती सड़क पर निकल गया। वह सड़क उसके स्कूल तक जाती है। उससे पहले पब्लिक गार्डन पड़ता है। यहां का चिड़िया घर है वह। वहां थोड़ी देर बैठ लेगा, और कालेज छूटने के समय घर पहुंच जायेगा।

हालांकि खुद वह किसी भी काम में भाग नहीं ले रहा, पर खुदबखुद जैसे किसी गहरे जाल में फंसता चला जा रहा है। घर पर भैंस को पुलिस अफसर के बंगले तक जाने से रोकना उसकी जिम्मेदारी है। घर के पास क्रिकेट खेलना जैसे भूल गया है। खेलने के लिए अब रहा ही कौन ? एक के बाद एक या तो शहर छोड़ गये हैं, या फिर बाहर आने का उत्साह मर गया है और फिर बुजुर्गों की अनुमति भी नहीं है। उनके मैदान में अब मुसलमान लड़के खेलते हैं। क्या खेलते हैं ? सुबह हाकी,

शाम लेफ्ट-राइट। डेरिंस और मॉरिस भी सहसा जैसे बुजुर्ग हो गये हैं। जाट बंदर, गुल्ली डंडा, सब छूट गया है। अच्छी तरह वे क्रिकेट खेल सकते हैं। नासिर अली खां उसे अब भी शामिल कर लेगा। पर पहली बार की प्रेक्टिस संतोषजनक नहीं थी। लड़कियों की याद उसे लगातार तंग करती जा रही है। एक क्षण प्यारी बेगम की याद आती है तो अगले क्षण ईसाई लड़की की। बस पर चढ़कर सिकंदराबाद जाओ तो नागरत्नम् की याद आती है। रेजीमेंटल बाजार की ओर जाओ तो चमरटोली की लड़की। क्या नाम है उसका ? पुष्पा। टैंक बंड के पास जाओ तो पद्मा शिवराव, मिस तारापुरवाला, आनंद राव। एक चेहरा भी ठीक से याद नहीं आता। उन सभी को यह बात मालूम हो जायेगी। क्या सोचेंगी उसके बारे में, जो एक चेहरा तक याद नहीं रख सकता। मन्नास की लड़कियां क्या इसीलिए कटी-कटी रहती हैं। वह इन सारी बातों को भूलकर पढ़ने में मन लगा सकता है। पर पिछले चार महीनों से जैसे दिमाग में कुछ घुसता ही नहीं। अब उसने हस्ताक्षर तक कर दिये हैं। कॉलेज के वक्त चिड़ियाघर में रहना पड़ता है।

चंद्रशेखर मोहाम हाजी मार्केट के पास वाली गली में आया। दो माह पहले, इस जगह को वह जानता तक नहीं था। पर अब नयी उलझनों के साथ नये लोग और नयी जगहें, उसकी जिंदगी में महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। पर इनमें कोई क्रम नहीं रहता। वह चाहे तो आसानी से इन्हें काटकर मुक्त हो सकता है। शहर के अन्य तमिलभाषियों की ही तरह वह भी अनुत्तरदायी और अप्रतिबद्ध बना रह सकता है। कोई भी उलझन हो, घर की या देश की, वक्त आने पर अपने-आप सुलझ जाती है। आज की उलझन को सुलझाने के लिए और भी प्रमुख लोग कटिबद्ध हैं—रजाकार, लायक अली, कासिम रिज़वी, जयप्रकाश नारायण, वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, स्वामी रामानंद तीर्थ, दिगंबर राव विंदु, काशीनाथ वैद्य। इन सबकी जिम्मेदारी है। कोई भी सवाल करे जवाब देने की जिम्मेदारी उनकी है। इनमें से कोई भी उसे देखकर खाने को भी नहीं पूछेगा। वह इतना महान नहीं, कि वे लोग इसकी खबर रखें। नरसिंह राव-जैसे लोगों के लिए ही उसकी जरूरत है। पर शायद उन्हें भी नहीं। वरना, नरसिंह राव के गुट को कहां नहीं खोजा इन दिनों। एक भी लड़का नहीं दीखता। अब वह हेगड़े को देखने जा रहा है। खाली हेगड़े नहीं, उसका नाम भी होगा। पर वह नहीं जानता। उसके पूछने पर भी किसी ने नहीं बताया। हो सकता है, पुलिस का डर हो। एक दिन शायद पुलिस उसे भी घसीट कर ले जाये। उसे बांधकर मार-पीट कर ले। उसके पास बताने को है ही क्या ? और फिर वह जो भी कहेगा, उसके आधार पर पुलिस वाले अधिक कुछ नहीं खोज सकते। लिहाजा उसे फिजूल में ही मार खानी पड़ेगी।

'हेगड़े नहीं है।' घर पर एक बुढ़िया बैठी थी। लगता है हैदराबाद में बूढ़ी औरतें काफी अधिक हैं।

चंद्रशेखर इस बार पब्लिक गार्डन के अंदर गया। वैभवशाली गेट, बड़ी ऊंची चार दीवारी, इमारत, बीच में एक बेजान-सा बगीचा ! चमकती हुई कार के एक कोने में पसरे सूखे निजाम की तरह, उस कूड़े भरे बगीचे में चंद्रशेखर एक ओर आराम से पसर गया। कुछ देर बाद ही उसे नींद ने आ घेरा।

13

चंद्रशेखर घर के गेट के पास आ गया। ज्योतिषीजी आ रहे थे।

'बाहर जा रहे हो क्या ?' उन्होंने पूछा।

'नहीं तो. .हां।' उसने ऊटपटांग जवाब दिया।

'बस कुछ देर के लिए भीतर आ जाओ।' वे बोले।

चंद्रशेखर उनके साथ भीतर आया। ज्योतिषी बरामदे में पड़े झूले पर बैठ गये। चंद्रशेखर भीतर रसोई घर के पास जाकर मां से बोला,

'मां ! शनीचर आये हैं।'

'ओहो। शुक्रवार की सुबह ही चले आये खाने ?'

'अच्छा तो पिताजी हैं न ?' उन्होंने अगला सवाल पूछा।

'मालूम नहीं।'

'गार्ड नाग भूषणम् के घर गये होंगे।'

'मैं बुलाकर लाता हूं।' चंद्रशेखर बोला।

पिताजी नाग भूषणम् के घर पर ही थे। मन्नास के घर के पड़ोस में ही उनका घर पड़ता था। मन्नास के घर के पार जा ही रहा था कि मॉरिस ने आवाज़ लगायी,'व्हाट मैन ?' चंद्रशेखर सिर हिलाता हुआ बोला,'अभी आया।' और सीधा नाग भूषणम् के घर घुस गया। प्याज तलने की तीखी गंध नथुनों में घुस गयी।

पिताजी और नाग भूषणम् बातें कर रहे थे। सिकंदराबाद से बेजवाड़ा तक आने-जाने वाली एक्सप्रेस गाड़ी के गार्ड थे। चंद्रशेखर को देखकर मज़ाक सूझ गया। बोले, 'क्या बात है उस्ताद, न सिर पर टोपी, न पैरों में चप्पल।' चंद्रशेखर ने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। उसने पिताजी की ओर देखा। पिताजी ने आंखें दिखाकर उसे बैठा दिया। चंद्रशेखर बैठ गया। नाग भूषणम् ने पिताजी से वार्तालाप बढ़ाया, 'हमेशा मिलिट्री डोरनाकल से ही आती है। पर कल काज़ीपेठ में ही एक डिब्बे में एक मिलिट्री वाला चढ़ गया। मेरे डिब्बे में चार चढ़ गये। अरे खड़े होने की

तो जगह नहीं थी। न बैठने की जगह ! और तो और पाखाना जाने की जगह नहीं। ऊपर से गाड़ी दो घंटे लेट थी। डोरनाकल चार बारह पर पहुंची। गाड़ी चली तो छः बज गये। अच्छी-भली सुबह हो गयी। ट्रेन चलती रही कि गोलियों की बौछार ! कहां ? एक फर्लांग दूर पेड़ों के पीछे से। अब रेलवे ट्रैक के दोनों ओर न पेड़ हैं न पौधे। सबको साफ कर रखा है न ! उसके पार वाले जंगल से बंदूकों की आवाजें आती रहीं। मुझे तो आर्डर यही थी की पुलिस की चेकिंग हो तो ठीक, वरना उस जगह गाड़ी नहीं रोकनी। पर क्या करता !'

'किसी ने जंजीर खींची क्या ?'

'अरे, हमें आदेश तो यही मिला था, कि जंजीर खींचने पर भी गाड़ी न रोकी जाय। बार्डर चेकिंग के बाद सीधे बेजबाड़ा। बीच के तीनों हाल्ट अब खत्म कर दिये गये। मेरे डिब्बे पर चढ़ आये मिलिट्री वालों ने चिल्लाकर धमकाया, 'रोको, रोको।' पर इससे पहले कि मैं सिग्नल देता, गाड़ी रुक गयी। फिर झांकने पर पता लगा, इंजिन वाले डिब्बे से दो मिलिट्री वाले कूदकर उतरे।

'फिर क्या हुआ ?'

'सारे मिलिट्री वाले कूदकर उतरे। उनके साथ चालीस-पचास रजाकार भी उतरे। बदूंक की दिशा को ओर चिल्लाते हुए भागे।'

'तब कम्यूनिस्टों ने गोलियां नहीं चलायीं ?'

'नहीं तो, शायद मिलिट्री वालों को देखकर घबरा गये होंगे। दस मिनट बाद दो बनजारों और तीन बनजारिनों को घसीटते हुए लाये। मैं बता नहीं सकता , क्या क्या हुआ।'

'मारा-पीटा क्या ?'

'मार ! अरे उनकी तो चटनी ही बना दी। डंडे से मारें, या फिर बंदूक से कोंचें, या फिर नीचे गिराकर लात पर लात मारें। वे औरतें धाड़-धाड़ रोती-चिल्लाती रहीं। उन्हें भी धर पकड़कर मारते रहे। अरे हमारे सामने उनके कपड़े उतार डाले।'

'औरतों के !'

'हां भाई, औरतों के। उनके लहंगे तो उतार नहीं पाये। चक्कू से नाड़े काट डाले। उन नंगी औरतों को इधर से उधर, उधर से इधर धकियाते रहे। पता नहीं कहां-कहां हाथ डालते रहे। वे बेचारी चिल्लाती रहीं। सारा शरीर घावों से भर गया। उन्हें नंगी ही मार-मार कर भगाया। वे बार-बार लौटकर मरे हुए अपने अपने पतियों के पास आती रहीं। उफ, देखा नहीं गया !'

नाग भूषणम् पगलाये से बैठे रहे। चंद्रशेखर के पिताजी भी भौंचक्के बैठे रहे।

चंद्रशेखर इस तरह के किस्से बहुत सुन चुका था, इसलिए वह शांत बना रहा। हैदराबाद और हिंदुस्तान के सीमांत शहरों में, वह भी वारंगल में पुलिस और मिलिट्री वालों का जोर कुछ अधिक ही था, क्योंकि यह शहर हैदराबाद और हिंदुस्तान की सीमा पर बना हुआ था। कम्यूनिस्टों के आतंक से तंग आकर ही रेलवे लाइन के दोनों ओर के जंगल कटवा दिये गये थे और दोनों ओर अब सपाट मैदान ही था। हुआ यह कि कम्यूनिस्ट तो कम पकड़े गये, बनजारों की ही आफत आयी। ये बनजारे पहने हुए कपड़े कम ही उतारते हैं। ढेर सारे शीशों से कढ़ा उनका घाघरा और चोली आजीवन उनके शरीर पर सोहता। ऐसी ही बनजारिनों के कपड़े उतरवाकर उनकी बेइज्जती की जा रही है। आम तौर पर इन बनाजारिनों को इनसान तक का दर्जा नहीं दिया जाता। वे भी लावारिसों की तरह, जहां मन आता पड़े रहते, जहां मन आता खा लेते। जब जहां जी चाहता, हग-मूत लेते। उन्हीं की आफत आयी है। कम्यूनिस्टों का वे साथ देते हैं। यही अभियोग है उन पर। कहीं शनि ग्रह का तो प्रकोप नहीं, उसने सोचा। चंद्रशेखर ने पिताजी से धीमे से कहा, 'ज्योतिषीजी आये हैं।'

'बस अभी चलता हूं।' पिताजी बोले।

नाग भूषणम् अब तक सहज हो चुके थे।'आज ऑफिस आ जाऊं ?' उन्होंने पिताजी से पूछा।

'क्यों ? कोई काम है क्या ?' पिताजी ने पूछा।

'हां पास के लिए अर्जी दे रखी है।'

'किसके लिए चाहिए ?'

'ओ, अपनी फैमिली के लिए।'

'जाना कहां है ?'

'मद्रास तक और कहां।'

'मद्रास ? पुलिस से परमिट बनवा लिया क्या ?'

'उसके बगैर काम नहीं चलेगा क्या ?'

'हैदराबाद स्टेट में कहीं भी चले जाओ, पर बाहर जाना हो तो टिकट परमिट के बगैर नहीं मिलेगा। पास का तो फिर सवाल ही नहीं उठता। तुम्हें तो मालूम होगा।'

नाग भूषणम् चुप रहे। उनके घर, उनके अलावा उनका भानजा, दो जवान लड़के भी हैं। फिर भी वे अपने परिवार वालों को बाहर भेजना चाहते हैं।

'मैं आकर देख तो लूं ?' नाग भूषणम् ने कहा।

'अर्जी मैं देख लूंगा। पर गोरे अफसर भी आजकल कुछ हिचकिचाने लगे हैं। हम

लोगों को सिकंदराबाद की कचहरी म परामट बनवाना होगा। अरे यहीं तो है, वाई. एम. सी. ए. के पास। तुम खुद ही चले जाना।'

'तो फिर वहीं चलकर देख लेता हूं। तुम भी भेज रहे हो क्या ?'

'कहां भेजूं ? दीदी मदुराई में हैं। वहीं भेज सकता हूं। पर इधर तीन-चार महीनों बाद बच्चों के फाइनल हैं। उन्हें तो हो जाने दूं।'

'पर क्या तुम सोचते हो, इस साल परीक्षाएं होंगी ? अभी तो वैसे ही बंद हैं। आधी से ज्यादा क्लास खाली रहती है।'

चंद्रशेखर को लगा, जैसे वह कांटों पर बैठा है। कॉलेज की बात छिड़ते ही उसका उत्साह मर जाता है।

'हूं, तो मैं चलता हूं।' चंद्रशेखर के पिता उठ गये।

'तो ठीक है भाई, मैं ऑफिस आता हूं। थोड़ी मेहरबानी कर देना।'

'जो हो सकेगा, करूंगा। मेरा काम कुछ बना ?'

'इस बार भी नहीं हो पाया। अगली बार कम-से-कम दस सेर तो लाकर दे ही दूंगा।'

'लेकिन घर पर चावल नहीं है भाई।'

'अगली बार जरूर ला दूंगा। मेरी पास वाली बात याद रखना।'

पिताजी के पीछे ही चंद्रशेखर भी उठकर बाहर आ गया। बस पिताजी को धोती बदलने की देर बची थी। खाना भी दोपहर में ही खाना होगा।

ज्योतिषीजी उठ खड़े हुए।

'आइये-आइये। कब आये ?' पिताजी ने पूछा।

'बस अभी दस मिनट हुए होंगे। लड़के ने जाकर बताया होगा।'

'स्नान तो कर ही लिया होगा ?' पिताजी ने अगला सवाल किया।

'सब सुबह ही निपटा चुका।'

'तो फिर आप भोजन कर लीजिये। मुझे देर हो रही है, मैं दोपहर में आकर खा लूंगा।'

'पूस का शुक्रवार है और आप बगैर खाये जा रहे हैं ?'

'चावल के लिए किसी से बात करनी थी। कोई बात नहीं। आप खा लीजिये, मैं दोपहर में खा लूंगा।'

पिताजी आफिस के लिए जल्दी-जल्दी तैयार हुए, और दौड़ते हुए से चले गये। ज्योतिषीजी के साथ चंद्रशेखर भी बैठ गया। मां ने पत्तल में पहले पालक परोस दिया।

'आप मक्के की रोटी तो खा लेते होंगे ?' मां ने ज्योतिषीजी से पूछा।

'यह भी क्या पूछना। आजकल हर घर में मक्के की रोटी ही तो बनती है।'

'राशन के चावल तो दो दिन भी नहीं चलते। ऊपर से चावल भी लाल है। दो हफ्ते हो गये, चीनी खत्म हो गयी।'

'आजकल तो हर चीज की कमी है। मेरा भानजा पिछले हफ्ते ही तिरुवारुर से लौटा है। वहां भी यही हाल है।'

'पर वहां, पिटने-विटने का डर तो नहीं है न।'

चंद्रशेखर ने चुपचाप एक कौर तोड़कर, उसे पालक में भिगोया और मुंह में ठूंस लिया। निजाम के राज्य में इस वक्त पालक, मक्के और मूंगफली के तेल की ही अधिकता थी। चावल तो राशन की दुकान तक भी नहीं पहुंच पाते। पहले कुछ दिनों तक तो गेहूं मिल जाता था। पर अब तो वह भी नहीं मिलता।

शक्कर तो महीने में एक बार ही मिल जाये तो बहुत है। वरना कॉफी गुड़ की ही पी जाती है। पोलारत में, जब तक हिंदुस्तानी फौज थी, तब तक किसी से कह सुनकर मिलिट्री के राशन से थोड़ी चीनी मिल जाती थी। पर अब दो महीनों से फौज भी वहां नहीं हैं। हिंदुस्तानी सरकार के प्रतिनिधि श्री के. एम. मुंशी के सचिव पिताजी के दूर के रिश्ते में लगते हैं। पर उनके पास भला कोई चीनी लेने जायेगा? के. एम. मुंशी नामी वकील हैं। लक्ष्मीकांत हत्या केस में वे त्यागराज भागवतर और एन. एस. कृष्णन के पक्ष में लड़े थे। वे कुछ कर तो नहीं पाये, पर बाद में लंदन में यह केस खारिज़ कर दिया गया। अब वे निजाम सल्तनत के मेहमान हैं। युद्ध को तो रोक ही सके हैं। पर क्या बनजारों की रक्षा वे कर सकेंगे?

चावल कम था, पर मां ने दही बहुत ज्यादा परोसी। हाथ धोते-धोते सहसा ज्योतिषीजी ने चंद्रशेखर से पूछा, 'तुम कॉलेज नहीं गये क्या?' चंद्रशेखर ने बात अनुसुनी कर दी। पर वे भला कहां छोड़ने वाले थे। दोबारा पूछा, 'तुम कॉलेज नहीं गये क्या?'

'नहीं।'

'खुल गये हैं न।'

'हां।'

'तो फिर तुम गये क्यों नहीं।'

'आज मेरी क्लास नहीं।'

'ऐसा भी होता है क्या?'

'हां।'

मां सारे वार्तालाप को जान-बूझकर अनसुना कर रही थीं। चंद्रशेखर ज्योतिषी को

वहीं छोड़कर पिछवाड़े तक गया। भैंस ने उसे देखकर सिर हिला दिया। चंद्रशेखर ने कान के पास उसे सहला दिया। भैंस के सारे रोंगटे खड़े हो गये।

चंद्रशेखर ने भैंस की पीठ थपथपा दी। दो दिन से उसे खाने को ठीक से कुछ नहीं मिला। पुआल तो कब का खत्म हो गया। पिछले दो दिनों से वह रोज मोंडा तक जाकर घास बांध लाता है। साइकिल पर वह कितना ला पायेगा ? बस एक ठेले वाला पिछले हफ्ते आया था। दाम अधिक होने की वजह से थोड़ी-सी ही घास खरीदी गयी। वह तो खत्म हो गयी। खैर चारा तो मिल ही जाता है। कुछ और खिला दो, तो उसे दस्त होने लगते हैं। उसे तो बस घास या पुआल चाहिए।

चंद्रशेखर पिछवाड़े का दरवाजा खोलकर मैदान की ओर निकल गया। ऊबड़-खाबड़ ज़मीन थी वहां। लांसर बैरक्स के पीछे वाले मकानों के पार वाला गिरजा घर शांत था। उसके भी आगे कई बंगले थे। पुलिस अधिकारी कासिम का बंगला भी वहीं आस-पास था। उस तरफ गये महीनों गुजर गये। अब भैंस को कोई चराने नहीं जाता, न ही उसे खुला छोड़ा जाता है। अगर इस क्षण भी उसे खोल दिया जाये, तो वह सीधी वहीं जाकर रुके ! वहीं पेड़-पौधे बेहद घने उगे हैं।

चंद्रशेखर मिलिट्री कब्रिस्तान की ओर चल दिया। काफी दूर पड़ती थी यह जगह। पर लगता नहीं था कि यह जगह इतनी दूर होगी। कब्रिस्तान का बाहरी गेट, इस वक्त नहीं खुल सकता। कितने भी झाड़ उग आये हैं उसके आस-पास। भीतर भी ढेर सारे झाड़ उगे हैं। उसके बीच पता नहीं कितने ही अफसरों के शरीर धूल में मिले होंगे। ब्रिटिश भी मरते हैं। वे भी हिंदुस्तान को छोड़कर चले जाते हैं। पर अब ? हैदराबाद को छोड़ कर हिंदुओं को जाना होगा। ब्रिटिश तो चले गये, ठीक। पर हम कहां जायें ? कैसा लगेगा, जब सारे हिंदू, हिंदुस्तान चले जायें, और सारे मुसलमान हैदराबाद। फिर इन ईसाइयों और पारसियों का क्या होगा ? अगर इस लांसर बैरक्स के सारे घरों में मुसलमान रहने लगें तो फिर एक बड़े अलमूनियम के गंगाल में खाना पक जाये, और सब में बंट जाये, तो कैसा लगे। अगर उन्हें अच्छा लगे, तो शरणार्थियों द्वारा बनाये जाने वाले पकौड़े भी वे साथ खा सकते हैं। फिर यह सारी जगह गंधाने लगेगी।

अगर पड़ोस में मुसलमान परिवार न होता, तो शायद इन छोटी-छोटी चीजों पर उसका ध्यान कतई नहीं जाता। बस नासिर का क्रिकेट ही वह जान पाता। या फिर मसूद की मखमली शेरवानी, या सूखा निजाम, बूढ़ियां, प्यारी बेगम और अपूर्व सुंदरी, नासिर की बहन। उसकी नसें तक कितनी साफ दिखतीं हैं, ठीक नरगिस तारापुरवाला की तरह। नरगिस चाहे जितनी सुंदर हो, पर उसकी आंखें जैसे सब कुछ परखी आंखें हैं। इतनी तीखी आंखें जाने क्यों सुंदरता को नष्ट कर देती हैं।

चंद्रशेखर बाहर अपनी सांस को बांधकर खड़ा रहा। आजकल वह आसानी से रुलाई रोक लेता है। कब तक घर पर बंधा रहे। बाहर निकलता भी है, तो कभी तीन-चार दिनों में एक बार सब्जी लाने या फिर मक्के का आटा लाने, या घास लाने। कॉलेज जाना तो छूट गया। क्या पता नाम तक कट गया हो। पर एक बात है, इस शहर में नाम चाहे जब पहुंचकर लिखवाया जा सकता है। अगर परीक्षाएं समय पर हुईं तो साल बेकार जायेगा, यह तय है।

चंद्रशेखर बौखला गया। जब तक कालेज बदस्तूर जाता रहा, तो जो भी चीजें उसे आम लगती रहीं, आज वे ही कितनी याद आ रहीं है। कॉलेज का गेट, तिराहे का बरगद, सालारजंग हॉल, विज्ञान कक्ष, मैदान, कला कक्ष, हॉल में लगे पंखे। उनमें एक पंखे का पंख गायब है। हुआ यह कि एक बार जब पंखा तेजी से खटर-खटर करता घूम रहा था, चंद्रशेखर ने एक कापी उठाकर उसकी ओर फेंक दी थी। एक पंख छिटककर गिरा। अच्छा हुआ जो हॉल में कोई था नहीं। ये तो जड़ वस्तुएं हैं। पर कितने ही दोस्त! उन्हें देखे बगैर रहा ही नहीं जाता। नरगिस तारापुरवाला को देखे बगैर कैसे रहे वह! पर उसकी जाति दूसरी है। एक अक्षर तमिल का नहीं जानती। जो चीजें इसे भाती हैं, उसे नहीं भातीं। (अब्दुल कादर की आइसक्रीम को छोड़कर) उसके चेहरे को देखने के लिए जैसे तरस गया है।

लगा, जैसे घर से कोई आवाज दे रहा है। चंद्रशेखर पिछवाड़े से ही घर के भीतर गया। स्कूल से उसकी बहनें खाने की छुट्टी पर घर लौटी थीं। झूले पर ज्योतिषीजी सो रहे थे।

'मिर्च पिसवा लाओगे?' मां ने पूछा।

'अच्छी तरह सुखा ली हैं न।' उसने पूछा।

'भला ऐसी ठंड में कितना सुखा पाती। लो तुम्हीं देख लो।'

चंद्रशेखर ने मिर्च हाथ में उठाकर देखी।

'इसे वह नहीं पीसेगा। इतनी दूर जाना बेकार जायेगा।'

'पर घर में पिसी मिर्च तो है ही नहीं। क्या करूं?'

'मैं कूट दूंगा, ओखली पोंछ दो।'

मां ने ओखली को धो-पोंछकर साफ किया। चंद्रशेखर ने कुटनी को हाथ में उठा लिया। उसकी बहनें खाकर चली गयीं। मां ने मिर्च ओखली में डाल दीं। चंद्रशेखर ने कूटना शुरू किया। गेट की आवाज आयी। पिताजी आ रहे थे। वह भूल गया कि पिताजी आज बगैर खाये गये हैं। अब कहां भागेगा वह? कितना चाहता है कि उनके सामने न पड़े पर बेवकूफी में कुछ न कुछ हो ही जाता है। मगर

क्या घर का बड़ा लड़का मिर्च भी न कूटे ! लेकिन पिताजी के सामने संकोच क्यों होने लगता है ?

उसे लगा, पिताजी को संकोच हुआ है । वह आज तक उन्हें समझ नहीं पाया है । इन दो महीनों में पिताजी ने गिनकर दस वाक्य बोले होंगे । आज भी मुश्किल से दो वाक्य बोले थे । लगा, पिताजी खुद उससे छिपते फिरते हैं ।

ज्योतिषीजी अब भी सो रहे थे । पिताजी आराम से खा रहे थे । पिताजी के पत्तल पर मां ने केवल एक ही मक्के की रोटी परोसी । पिताजी ने उसे मट्ठे से भिगोकर खाया ।

चंद्रशेखर की नाक जलने लगी । हो सकता है कि उसने मिर्च वाले हाथों से नाक छू ली हो । वह अब भी कूट रहा है । मिर्च के टुकड़े हो गये थे । लगा, वह महीन नहीं हो सकती । एकाध बार कुटनी से भयंकर आवाज भी निकलती पर ज्योतिषीजी की नींद तब भी नहीं टूटी ।

मां ने बीच में आकर मिर्च को लोहे की करछुल से चला दिया । महीन छलनी से उसे छाना । पाउडर तो कम ही निकला, चोकर अधिक निकला ।

पिताजी दोबारा ऑफिस चले गये । मां ने शाम के नाश्ते और रात के खाने के लिए मक्के की रोटी बनानी शुरू की । जब उनसे रोटी ठीक से न बनती तो वे चंद्रशेखर को आवाज लगातीं । चंद्रशेखर चुपचाप रसोई घर में उनकी सहायता करता रहा ।

ज्योतिषीजी की नींद टूटी और चंद्रशेखर का छोटा भाई पिच्चुमणि लौट आया । इतने में ही, उसकी बहनें भी लौट आयीं । मां ने सब को बुलाया, पर चंद्रशेखर और ज्योतिषीजी को छोड़कर कोई और मक्के की रोटी खाने नहीं आया ।

पिताजी जब लौटे तभी ज्योतिषजी का आना सार्थक हुआ । घर भर की कुंडली लेकर वे दोनों बैठ गये । कितनी बार उन्हें परखा होगा । इतने दिनों में तो उन्हें कुंडलियां जबानी याद हो गयी होंगी । अगर उन्होंने यह नहीं बताया होता कि उसे साढ़े साती है, तो उसके माता-पिता भी औरों की तरह उसके प्रति कठोर ही रहते ।

जब अंधेरा हुआ तो पिच्चुमणि के अलावा बाकी सभी विनायक मंदिर चल दिये । यह मंदिर स्टेशन के पास था । कम से कम मील भर दूर । ज्योतिषीजी भी साथ हो लिये । मंदिर तक आये और फिर वहां से कहीं ओर चले गये । मंदिर में भीड़ कम ही थी । पास में ही मस्जिद थी । मंदिर में हमेशा सावधानी बरती जाती थी । घंटे जोर से नहीं बजाये जाते थे । न गाया जाता था, न ही कोई वाद्य बजाया जाता

था। इस समय तो लोग और भी सतर्क थे। विनायक आष्टोत्तर का पाठ धीमे स्वर में होता रहा।

मंदिर से घर भी लौटे तो बारात की शक्ल में। पहले पिताजी फिर चंद्रशेखर, उसके पीछे दो लड़कियां, सबके पीछे मां। आधा फर्लांग चले होंगे कि पिताजी के दोस्त कुशल क्षेम पूछकर निकल गये। पिताजी अब कुछ घबराये थे। सामने कोट, पैंट पहने आते एक व्यक्ति से उन्होंने अंग्रेजी में पूछा, 'क्या गांधी को गोली मार दी गयी ?'

अब तक चंद्रशेखर पिताजी के पास पहुंच चुका था, उन्होंने गुस्से में जवाब दिया। 'गोली ? अरे जान चली गयी, दो घंटे हुए। और आप अब पूछ रहे हैं।'

14

उनकी बारात तितर-बितर हो गयी। पिताजी तेजी से चल दिये। मां और बहनें भी जल्दी चलने लगीं। चंद्रशेखर सबके आगे चला जा रहा था। पीछे मुड़ा तो सब परछांइयों-से नज़र आये।

चार्लस स्ट्रीट मेडाकी गीस हाईस्कूल के बाद, कुछ नीचे ढलान की ओर उतर गयी। आक्सफोर्ड गली के बाद फिर ऊंची चढ़ायी शुरू हो गयी। पूरी सड़क खाली पड़ी थी। सड़क के दोनों ओर बस चारदीवारियां ही बनी थीं। मकान कुछ भीतर बने होंगे। वे भी अंधेरे में पड़े थे।

लांसर बैरक्स के मकानों में धीमी रोशनी थी। सब कम पावर वाले बल्बों का ही उपयोग करते थे। हो सकता है वे चाहते हों, घर जल्दी नज़र न आयें। किसी की नज़र से बचे रहना, सुरक्षात्मक भी है। पर उस वक्त कोई रेडियो नहीं सुन रहा था।

चंद्रशेखर जब बरगद के पास से गुजर रहा था, मॉरिस वहीं था। मॉरिस और वह अब कम ही बातें करते थे। कारण कुछ खास नहीं था। मॉरिस भी अब बड़ा हो रहा था। हो सकता है, उसे भी अब भविष्य की चिंता हो। पर चंद्रशेखर को देखकर उसने 'हैलो' कहा।

'तुम्हें मालूम है ?' चंद्रशेखर ने पूछा।

'क्या ?'

'गांधी के बारे में।'

'कौन गांधी ?'

'महात्मा गांधी।'

'ओह। हां तो, क्या हुआ उन्हें।'

'किसी ने गोली मार दी।'

'अच्छा !'

मॉरिस ने उछलकर डाल पकड़ ली । अब शायद झूलने लग जायेगा ।

'तुम्हें नहीं मालूम था ?' चंद्रशेखर ने पूछा ।

'नहीं तो ।' मॉरिस ने उत्तर दिया । फिर डाल पकड़कर झूलने लगा ।

चंद्रशेखर उसे वहीं छोड़कर आगे बढ़ गया । घर के पास आने पर याद आया चाबी नहीं है । मां के पास ही होगी । तो फिर मां के लौटने का इंतजार करना होगा ।

चंद्रशेखर फिर वापस दौड़ने लगा । मॉरिस को आश्चर्य हुआ, 'व्हाट मैन ?' चंद्रशेखर ने उसे कोई जवाब नहीं दिया । पिताजी गली के नुक्कड़ पर ही मिल गये ।

'कहां भाग रहे हो ?' उन्होंने पूछा ।

'चाबी लेने ।'

'चाबी ? क्यों पिच्चुमणि नहीं है क्या ?'

चंद्रशेखर अब फिर घर की ओर भागा । घर उसने बंद नहीं किया था, उसे अब याद आया । घर पर छोटा भाई इंतजार कर रहा होगा । फिर मॉरिस से टकरा गया । इस बार उसने बात नहीं की ।

'बत्ती तक नहीं जलायी क्या ?' चंद्रशेखर ने भाई से पूछा । उसने जवाब नहीं दिया । चंद्रशेखर ने दौड़कर रेडियो ऑन किया । पिच्चुमणि चंद्रशेखर के पास आकर खड़ा हो गया । वैसे भी रेडियो एक मिनट बाद गरम होता है । पर काफी देर होने के बाद भी कोई हलचल नहीं हुई ।

'बत्ती क्यों नहीं जलायी ?' उसने दुबारा पूछते हुए बत्ती जलायी । एकदम धीमी रोशनी ? लगा, जैसे अब बुझी कि तब बुझी ।

'इतनी धीमी क्यों है ?' चंद्रशेखर ने पूछा । पिछले चार महीनों में वह पहली बार अपने भाई से इतना बोला है ।

'मुझे क्या मालूम ?' भाई ने जवाब दिया ।

चंद्रशेखर ने बाहर आकर पड़ोस में झांककर देखा । कासिम के घर शाम आठ बजे तक रेडियो बजता है । पर वहां भी कोई हलचल नहीं थी । रोशनी वहां भी धीमी थी ।

इतने में मां और पिताजी भी आ गये । मां ने कहा, 'रेडियो तो चलाकर देख लो ।' यानी गांधी वाली बात अब वह भी जानती हैं । पिताजी ने ही बतलाया होगा ।

'रेडियो लगता ही नहीं ।' चंद्रशेखर ने कहा । मां लालटेन ढूंढ़ने चली गयीं ।

चंद्रशेखर ने अपनी मेज की दराज़ खोली । कोने में टटोलकर देखा । वहीं पर उसने कुछ सिक्के डाल रखे थे । मुश्किल से चवन्नी होगी । उसे लेकर वह बाहर

निकल गया। मां रात के खाने से बेफ़िक पिताजी से कुछ पूछे जा रही थी। गांधी की मौत ने उसके दैनिक क्रम को बदल दिया था।

अब पता चला, घरों की रोशनी इतनी धीमी क्यों है ? बड़ी छतों वाले उन सारे घरों में तेल के दीये टिमटिमा रहे थे। चंद्रशेखर जब मन्नास का घर पार कर रहा था, तो मन्नास की आवाज़ आयी।

'यू मैन ! गांधी मर गया क्या ?'

'मैंने भी यही सुना है। आपको किसने बताया ?' चंद्रशेखर ने पूछा।

'मेरे बेटे ने।'

'कौन डेरिंस ?'

'नहीं मॉरिस ने।'

मन्नास से उसने और कुछ नहीं पूछा। बरगद के नीचे मॉरिस के साथ और भी लड़के थे। चंद्रशेखर सीधा सड़क की ओर निकल गया। गली में एक आदमी नहीं नज़र आया।

चंद्रशेखर क्लाक टावर की दिशा में भागा। आक्सफोर्ड गली भी खाली होगी। पता नहीं चारदीवारी से कितने भीतर बंगले बने हुए हैं। अगर उतनी ही बड़ी जमीन को ठीक से नहीं रखा गया, तो झाड़ उग आये होंगे, बेतरतीब। फिर सांप ! कितनी बार उसने सांपों को सड़क पार करते या किसी कार के पहिये के नीचे आते देखा है ? पर अब ठंड के दिन हैं। इस समय सांप बाहर कम निकलते हैं। अब निकल भी आये, तो वह कर क्या सकता है ? भाग लेगा बस।

चंद्रशेखर को सांप तो नहीं दिखा, पर वह भागने लगा। चप्पल बार-बार बजती रही। अच्छा ही हुआ। सांप बाहर आ भी जाये तो आवाज़ भांपकर भीतर चला जायेगा।

क्लाक टावर के पास कुछ बत्तियां जल रही थीं, कुछ लोग भी आ जा रहे थे। अलाउद्दीन के परिवार की निजाम से नहीं पटती। इसी कारण सुना है, इस अलाउद्दीन के किसी रिश्तेदार को पैसे देकर आइसफ्रूट की फैक्टरी खुलवायी गयी थी। इस सर्दी में भी लोग आईसक्रीम और आइसफ्रूट खाते हैं। यहां तो रेडियो जरूर होगा। इतनी बिजली जो खर्च की जा रही है। वहां जाकर पूछ ले क्या वह ?

किंग्सवे में लोग कम ही आ-जा रहे थे। और दिनों में चाहे जैसे भी होता हो, शुक्रवार को नौ-साढ़े नौ बजे ही दुकानें बंद होती हैं। वह किसी सिनेमा हाल तक चला जाये क्या ? वहां कोई अखबार तो मिल ही जायेगा। शाम को निकलने वाले 'हैदराबाद बुलेटिन' में खबर जरूर छपी होगी। अगर रेलवे स्टेशन के पास गया होता तो अब तक एक प्रति खरीद चुका होता। पता नहीं क्यों, क्लाक टावर की

ओर आ गया। गांधीजी की मौत की खबर सुनकर जो आदमी बौखलाकर बोला था, उसी से पूछ लेते। पर पिताजी साथ में थे, तो भला वह कैसे पूछता। पर पिताजी ने क्यों नहीं पूछा ? क्या उन्हें गांधी से नफरत है ? क्यों ? क्या गांधी से नफरत करने वाले भी हैं ? सिवाय उस एक व्यक्ति के जिसने उनकी हत्या की है। कौन होगा वह ? कोई मुसलमान ?

चंद्रशेखर का खून सहसा गरम हो गया। मुसलमान ! अगर यह काम किसी मुसलमान का होगा, तो वह अकेला दस मुसलमानों की हत्या कर डालेगा। हो सका तो सौ मुसलमानों का खून कर डालेगा। जब तक हो सके, वह करता ही रहेगा। निजाम की हत्या कर देगा। कासिम रिज़वी को मार डालेगा।

पर क्या वे मुसलमान उसके लिए गरदन नीची किये खड़े रहेंगे ? यहां तो हिंदू ही हैं, जो गरदन झुकाकर खड़े हैं। या फिर बनजारे हैं। पर ये बनजारे हिंदू हैं या मुसलमान ?

चंद्रशेखर मिनर्वा टाकीज़ तक गया। वहां शाम का खेल खत्म हो चुका था। पान की दुकान ही खुली थी। वहां खड़े एक बच्चे से उसने तेलुगु में पूछा, 'गांधीजी के बारे में कुछ जानते हो ?'

'हां साहब। उसे एक पागल ने मार डाला।'

'तुम्हें कैसे मालूम ?'

'रेडियो पर सुना था, सॉब। यहां किंग्सवे में, सात, साढ़े सात तक खबर मिल गयी थी और सारी दुकानें बंद हो गयीं '

'पर रेलवे स्टेशन के पास कोई खबर नहीं मिली।'

'सारा शहर जानता है सॉब।'

नहीं। नहीं जानता यह शहर। या फिर लांसर बैरक्स शहर से नहीं जुड़ता। वहां वक्त पर बिजली गायब रहती है। कोई रेडियो नहीं सुन सकता। लांसर बैरक्स में गांधी की आत्मा नहीं है। वहां या तो ईसाई रहते हैं, या फिर रज़ाकार। उन्हें गांधी की क्या जरूरत ?

तो क्या गांधी सचमुच मर गये ? नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। वे तो कहते थे कि एक सौ पचास वर्ष जियेंगे। किसी ने झूठी अफवाह फैलायी है। खबर रेडियो पर ही तो सुनी है। क्या पता रेडियो पर झूठी बात फैलायी गयी हो। युद्ध के जमाने में रेडियो पर कितनी झूठी खबरें सुनायी जाती थीं। जर्मन रेडियो गोरों के लिए झूठ बोला करता था। ब्रिटिश रेडियो जापानियों के लिए झूठा था। हो सकता है, इस वक्त भी रेडियो झूठ बोला हो। गांधी मर कैसे सकते हैं ? कितनी बार तो वे

उपवास रख चुके हैं। महीने में इक्कीस उपवास। ये मरे, अब मरे, करते-करते कितनी बार वे जी चुके हैं।

चंद्रशेखर, अखबार की खोज में 'रिवोली' टाकीज़ तक निकल गया था। उस सिनेमा हाउस के मालिक ही 'हैदराबाद बुलेटिन' निकालते हैं। और कहीं बिके या न बिके, रिवोली में बच्चे, अंक लिए चिल्लाते रहते हैं। पर यह सब शाम को ही होता है। इस वक्त तो सारा शहर सोया पड़ा है, अखबार कौन बेचेगा ?

रिवोली सिनेमा में रात का शो नहीं चलता। सिनेमा में लगी पान की दुकान और मिठाई कि दुकान भी बंद पड़ी थी। मैनेजर का कमरा बहरहाल खुला हुआ था। चंद्रशेखर कमरे के दरवाजे तक गया। उसे देखकर भीतर बैठे आदमी ने पूछा, 'कौन ?'

चंद्रशेखर ने भीतर घुसकर कहा, 'मुझे बुलेटिन की एक प्रति चाहिए।'

'पर सब बंद कर चुके हैं, हम !'

चंद्रशेखर लौटने लगा, तो वह बोला, 'चाहो, तो मेरे वाली प्रति ले जाओ।' मेज की दराज में से उसने एक प्रति निकाली और उसे दे दी।

चंद्रशेखर ने जल्दी-जल्दी अखबार पलटा। 'हैदराबाद बुलेटिन' एक ही पृष्ठ का है। उसके चार तह किये गये थे। पता नहीं क्या-क्या खबरें भरी थीं। कितने ही विज्ञापन ! हैदराबाद मंत्रिमंडल के नये मंत्री – जी. रामाचारी ! यानी लायक अली के नेतृत्व में एक हिंदू ! ईदुहादुल मुसलमानों की सभा। जुलूस। हिंदुस्तान सरकार के अत्याचार ! हैदराबाद की दो करोड़ जनता को भूखे मार डालने की साजिश। आवश्यक वस्तुओं पर रोकथाम। पेट्रोल नहीं, डीजल नहीं। दवाइयां गायब। खाने की सामग्री नहीं, मशीन, लॉरी, कार, क्लोरीन कुछ भी नहीं। निजाम प्रदेश का ठेका लिया है क्या हिंदुस्तान की सरकार ने ? कल तक ये जेलों में सड़ रहे थे और आज, निजाम की रियासत से टक्कर ले रहे हैं ! यह तीन सौ वर्ष पुराना शाही खानदान है। सात पुश्तों से यह खानदान चला आ रहा है। पर हिंदुस्तान का अत्याचार अब और नहीं चलेगा। हमारे रुस्तमे-दीवान अरस्तुइजामिन मुसवरल- मुल्क- वाल-मुमथ्यिक फतह जंग सिपहसालार मीर उसमान अली खान बहादुर निजामुल मुल्क असफजा के पैर बंगाल की खाड़ी धोयेगी। अरब सागर की लहर उनके रेशमी नागरों को भिगोयेंगी। दिल्ली के लाल किले पर असफजा का झंडा फहराया जायेगा।

चंद्रशेखर ने पूरा बुलेटिन खोज डाला। गांधी के बारे में एक शब्द नहीं। गांधी नहीं मरे।

'लौटा क्यों रहे हो ? तुम्हें नहीं चाहिए क्या ?'

'नहीं, किसी ने अफवाह उड़ा दी थी कि गांधी मर गये हैं। मैं तो देखने आया था, कि यह सच है या नहीं।'

'वह अफवाह नहीं है भाई ! सच है। इसीलिए तो रात का शो कैंसिल कर दिया है।'

'सच है ?'

'हां भाई, सच है, पर क्या किया जाये।'

'पर, अखबार में तो कुछ नहीं है।'

'यह अखबार तो चार बजे ही छप गया था।'

'पर एक शब्द भी तो नहीं है।'

'पर तब वह मरे ही कहां थे ?'

वह भी दुखी था। उसने कोने में रखे रेडियो को चलाया। चंद्रशेखर को अपनी जगह से रेडियो नहीं दीखा।

रेडियो से छौंकने-जैसी आवाजें आयीं। सहसा वह सतर्क होकर कांटे को घुमाने लगा। अंग्रेजी में कोई बोल रहा था, 'पंडित नेहरू, पंडित नेहरू की आवाज है यह, सुनिये।'

रेडियो बोल रहा था, 'हमारे जीवन की रोशनी अब खत्म हो गयी। सब तरफ अंधेरा ही अंधेरा है। संसार को रोशनी से भर देने वाली वह रोशनी साधारण रोशनी नहीं थी। वह शाश्वत है।'

रेडियो पर भाषण आता रहा, और चंद्रशेखर बाहर निकल आया। इस वीरान पड़े सिनेमा घर ने उसके गांधी को मार डाला है। गांधी सचमुच नहीं रहे।

उसे लगा, सड़क के किनारे उगे पेड़ों ने जनवरी के अंधेरे को और गहरा कर दिया है। बस अंधेरा ही अंधेरा। रोशनी खत्म हो गयी। साधारण रोशनी नहीं। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। ये खबरें उसे सांसारिक लगीं। रिवोली से अब सीधे घर ही जाना है। अब ढाई मील पैदल रगड़ना होगा। यह मिलिट्री की जगह है। एक ज़माने में यहां हर वक्त मिलिट्री की ट्रकें आती-जाती रहती थीं। इस समय न मिलिट्री है न ट्रकें। सचमुच के भूत ही घूम रहे होंगे यहां। परेड मैदान में एक बड़ा कब्रिस्तान है। ईसाई भूत ही घूमेंगे। लोग तो कहते हैं, रिवोली सिनेमा हाऊस में ही भूत रहते हैं। अगर सभी मरने वाले भूत बन जाते हैं, तो क्या गांधी भी भूत बन गये होंगे। वह उनका भूत देख सकेगा क्या ?

गांधी को उसने एक बार भी नहीं देखा। गांधी जहां भी गये, जहां भी रहे, उसे सब सपना ही लगता है। वर्धा, यरवदा जेल, सेवाग्राम, साबरमती, नोआखली, हिंदी प्रचार सभा। .. .. गांधीजी मद्रास की प्रचार सभा तक आये हैं। पर एक बार भी

हैदराबाद नहीं आये। पता नहीं कहां-कहां गये हैं, पर सिकंदराबाद कभी नहीं आये। क्या वे यहां के लोगों को प्यार नहीं करते ? उन्हें उनकी जरूरत नहीं है क्या ?

'गांधी' 'गांधी', चंद्रशेखर चिल्लाता हुआ दौड़ने लगा। उसकी चीख सुनकर कुछ झींगुर चुप हो गये। एक चिड़िया उड़ती हुई डाल के बीच फड़फड़ाती हुई फंस गयी। चंद्रशेखर सड़क को छोड़कर परेड के मैदान के बीच भागने लगा। सैंकड़ों जवानों और सिपाहियों के परेड के मैदान में वह गांधी का नाम लेकर चीखता रहा, भागता रहा। परेड मैदान के चारों ओर सड़कें थीं। उन सड़कों के किनारे लगे पेड़ भी अंधेरे में नहीं दिखे। ऊपर खुला आसमान, तारे। चंद्रशेखर एक पौधे से टकरा गया। वह मुंह के बल गिरा। लाल मिट्टी का समतल मैदान ! लाल पत्थर इधर-उधर पड़े हुए थे। अंधेरे में रंग तो पहचाना नहीं जाता, पर चोट तो लगती ही है। चंद्रशेखर की नाक से बहकर खून होंठों को गीला करने लगा।

चंद्रशेखर ने बैठे-बैठे जमीन पर मुक्के मारे।

'तुम मर गये ! क्यों, पर क्यों मरे ?' वह बार-बार मुक्के मारता रहा। बार-बार पैर पटकता रहा।

वह उठ गया। हाथों में, पैरों में भयंकर चोटें आ गयी थीं। वह उठकर दूसरी दिशा की ओर भागा। उस दिशा में ही कब्रिस्तान था। फिर ठोकर खाकर गिर पड़ा।'हाय मैंने तुम्हें एक बार भी तो नहीं देखा।' वह चीख पड़ा। फिर वह जमीन पर हाथ-पैर पटकने लगा। पूरा जोर लगाकर वह चीखा, 'गांधी, ओ गांधी।' उसे लगा, उसकी आवाज सुनकर कोई आ जायेगा। उसने चारों ओर देखा। उसे खुद अपने आवेश पर आश्चर्य हुआ। हाथों से जमीन को नोंचने लगा। जमीन ठोस थी। उसने दम लगाकर थोड़ी सी मिट्टी उठायी और ऊपर उछाल दी। उसने दोबारा भी यही किया। लक्ष्यहीन दौड़ता रहा। फिर मुंह के बल गिरा। सिर को कई बार जमीन पर पटकता रहा।

रेसकोर्स के पास एक मोटर भागी जा रही थी। आधा मील दूर रही होगी वह मोटर। चंद्रशेखर उस दिशा की ओर भागने लगा। पर कार आंखों से ओझल हो चुकी थी।

वह हताश हो गया था। उसने मुंह से कई आवाजें निकालीं। घास को पूरी तेजी के साथ उखाड़ने लगा। उसकी उंगलियां जलने लगी थीं।

चंद्रशेखर फिर से दौड़ने लगा। उसने महसूस किया कि उसके कपड़े कई जगह से फट चुके हैं। कोहरा घना था, पर उसे लगा, जैसे उसका शरीर जल रहा है। उसने अपने कपड़े फाड़ लिये। वह नीचे गिर गया।

वह जहां गिरा था वहां कंकड़ों का ढेर लगा हुआ था। पता नहीं किसलिए वहां कंकड़ जमा किया गया था। चंद्रशेखर ने उन्हें अपने हाथों में भर लिया। पूरा जोर लगाकर अलग-अलग दिशाओं में उन्हें फेंका। उसके बायें हाथ में मोच आ गयी। उसने फिर भी एक कंकड़ उठाया और उसे उछाला। उसके कंधे की नस सहसा तन गयी और उसका दर्द बढ़ गया।'मां' वह दर्द से बिलबिला उठा।

उसकी सांस फूल रही थी। शरीर में कई जगह चोटें आयी थीं। उसका आक्रोश अभी भी शांत नहीं हुआ था। उसे लगा, जैसे किसी ने उसे धोखा दिया है।

आकाश की ओर देखकर वह चीखा, 'गांधी, गांधी।' बायें हाथ से उसने पत्थर उठाया और ऊपर फेंका। वह काफी ऊपर नहीं पहुंच पाया। शीघ्र ही जमीन पर आवाज के साथ गिर गया।

आसमान रोज़-जैसा चुप था। तारे, हमेशा की तरह टिमटिमा रहे थे। वह बेहद थकान महसूस कर रहा था और जमीन पर चित्त लेट गया। अंधेरा गहरा रहा था। उसे लगा, अंधेरे के भी रंग होते हैं। अंधेरा शायद रसायन है, उसने सोचा। वह हवा में तरलता लिए बहता है। उसने लेटे-लेटे ही आस-पास की जमीन टटोली। हाथ को उसने आगे बढ़ाते हुए टटोला। उसने महसूस किया कि वह उस मैदान में एक क्रिकेट पिच पर लेटा हुआ है। हो सकता है, कभी उसने खुद वहां क्रिकेट खेली हो।

उसे घर की याद आयी। घर पर बिजली आ गयी होगी, या फिर वे लोग अंधेरे में ही टटोल रहे होंगे। रोशनी तो खत्म हो गयी है। लोग अंधेरे में सो गये होंगे। न, उसके लिए जाग रहे होंगे। नहीं, नहीं। सभी जाग रहे होंगे। गांधी की मौत के बारे में सोच रहे होंगे। रो रहे होंगे। किसी को भी खाने की सुध नहीं होगी। चूहे और तिलचट्टे बेफिक्र इधर-उधर घूम रहे होंगे। भैंस रंभा रही होगी।

उसे यूं इस वक्त अकेले लेटना अच्छा लगा। उसके मन को शांति मिल रही थी। शांति ? न, उसे शक होने लगा था। सब उसे धोखा दे रहे हैं। गांधी ने भी धोखा ही दिया है।

उसके भीतर गुस्सा और भरने लगा था। यहां मैदान पर पड़े रहना खलने लगा था। वह फिर उठा और भागने लगा। पता नहीं, कहां, कहां, उसने अखबारों में गांधी की तस्वीरें देखी थीं, उसे सब याद आने लगीं। एक इंजन को सजाया गया था। उस इंजन के आगे गांधी की बड़ी तस्वीर लगायी थी। गांधी के साथ उसका अंतिम संबंध इसी रेल के साथ बना था। यही इंजन गांधी को दक्षिण यात्रा के लिए ले गया था। इसी अंधेरे-सा काला इंजन। अब खुद वह इंजन की तरह इधर-उधर भाग रहा है।

एक जगह, वह रुक गया। पूरी ताकत लगाकर चीखा। हारकर वह जमीन पर बैठ गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

15

उस रोज नागरत्नम् घर आयी थी। परीक्षाएं समाप्त हो गयी थीं। परीक्षाएं केवल एक महीने के लिए ही टली थीं। कॉलेज में आधे लोगों ने परीक्षा की फीस दी थी। जितने लोगों नें फीस दी थी उनमें से आधे ही लोगों ने परीक्षा दी। पता नहीं अब पास कितने होंगे। पर उसने पेपर ठीक किये हैं। उसके घरवाले शहर छोड़कर जा रहे हैं। उसके पिताजी ने दाढ़ी-मूंछ बढ़ाकर डाक्टर से सर्टिफिकेट ले लिया है। दो महीने की छुट्टी भी मिल गयी है। पुलिस का परमिट भी मिल गया है। अगले शनिवार को 12 डाउन से। रात ग्यारह बजे तक वे लोग काज़ीपेठ पहुंच जायेंगे। स्टेशन पर इनके डिब्बे चार घंटे तक यार्ड में पड़े रहेंगे। फिर ग्रांट ट्रंक एक्सप्रेस आयेगी। इन डिब्बों को उनके साथ जोड़ दिया जायेगा। कल तक तो ऐसा ही होता था। अब एक हफ्ते तक ऐसा ही होगा। सुबह साढ़े आठ बजे बेजवाड़ा पहुंच जायेंगे। फिर जब सब कुछ सामान्य हो जायेगा तो वे लोग लौट आयेंगे। नहीं तो वहीं कहीं बस जायेंगे। मद्रास में कितने कॉलेज हैं! बस पिताजी को यहां लौट आना होगा। रिटायर होने तक यहीं सड़ना होगा! अभी तीन-चार साल और हैं।'तो फिर चलूं! सबसे मिलने आयी थी। चंद्रू, तो फिर मुझे भूल तो नहीं जाओगे? तुम्हारा चेहरा क्यों बदल रहा है? चिट्ठी लिखोगे न! मैं तुम लोगों को जरूर लिखूंगी।'

चंद्रशेखर लगातार उसके चेहरे को देख रहा था। बस यह आदत हो गयी है। कोई जब बात करता है, तो वह उसी के चेहरे को घूरता रहता है इन दिनों। उसे देखे भी तो कितने दिन हो गये हैं! भीड़ में देखी शक्लें ही दिमाग में बनी रहती हैं। पर उसी को अगर पास से देखा तो वह क्यों बदली-बदली सी लगती है? कितनी बड़ी लगती है, कितनी काली लग रही है! चेहरे में चिकनाहट नहीं है। उसमें ढेर से मुंहासे हैं। बाल भी कितने उग आये हैं चेहरे पर। नागरत्नम् स्नेह से हंस दी।

'चुप क्यों हो?'

'मैं कुछ सोच रहा था', चंद्रशेखर बोला।

'मैं बोल रही थी, और तुम सोच रहे हो।'

'मैं तो सुन भी रहा था ओर सोच भी रहा था ।'

'ऐसा कभी होता है ! इसका मतलब हुआ, कि तुमने मेरी बातें ठीक से सुनी ही नहीं ।'

'तो फिर मैं, तुम्हारी बातें दोहराकर बताऊं ।'

'न, न । छोड़ो !'

दोनों कुछ देर चुप रहे । नागरत्नम् बोली, यह शहर छोड़कर जाना भला लगता है । पर डर भी लग रहा है । हमारे रिश्तेदार कुछ अजीब हैं । मैं डरती हूं, उनके बीच कैसे रह पाऊंगी । यह क्या ? मैं बोले जा रही हूं और तुम सोचे जा रहे हो ।'

'बताऊं ?'

'क्या ?'

'जो सोच रहा था ।'

नागरत्नम् को शायद लाज आ गयी । चंद्रशेखर जानता था कि उसकी सुरक्षावादी भावना उसे पूछने से रोक देगी । आज तक दो वाक्य भी मुश्किल से वे आपस में बोले होंगे । वह हमेशा उसे यूं दुलार से देखती, जैसे किसी छोटे बच्चे को पुचकार रही हो । चंद्रशेखर उसे देखने के लिए कितनी बार गलियों के चक्कर लगाता रहा है, पर उसने आज तक उस पर कभी ध्यान नहीं दिया है । वह अब इसीलिए उससे चार बातें कर रही है, क्योंकि वह शहर छोड़ रही है । दो महीने पहले भी, सुना था, वह दो दिनों तक घर से गायब रही थी । ऊपर से डरने का बहाना कर रही है ।

'तो मैं चलूं ।' कहकर वह भाग निकली । चंद्रशेखर उन गुजरे हुए चंद मिनटों का जैसे भरोसा नहीं कर पाया । क्या बात है ? वह कैसे भरोसा करे ? एक मिनट वह उसके पास आती है, उससे बातें करती हैं, उसके निकट परिचय के बाद एकदम गायब हो जाती है ।

मुझे इस तरह की लड़कियां नहीं चाहिए । अब मुझे लड़कियों की ही जरूरत नहीं । काश यह छः महीने पहले इस तरह बातें करती, तो मुझे कितनी खुशी हुई होती । मैं अब खुश नहीं हो पाता । अब मुझे लड़कियों को देखकर झुरझुरी नहीं उठती । नागरत्नम् उसके घर में सबसे विदा ले रही है । वह चाहता तो उसका ध्यान क्षण भर के लिए खींच सकता था । पर वह तो जा रही है हमेशा के लिए । चंद्रशेखर चुप ही रहा ।

उसके यहां फूल खूब खिल आये थे । लाल रंग के ये गुलमोहर । वैसे इन गुलमोहर के गुच्छों ने मई के महीने को कभी धोखा नहीं दिया । हैदराबाद की बरसात भी कुछ ऐसी है । जून की छः या सात तारीख तक बारिश जरूर हो जाती है । बारिश भी

कोई खास तो नहीं । वहां बरसात वैसे भी कम होती है । भारी बरसात होती तो काहे लोग मक्का खाते रहते !

गुलमोहर का पेड़ जितना भरा-भरा दिख रहा था, बाकी के पेड़ उतने ही सूखे । पीपल, नीम और बरगद के पेड़ों का हरापन कहां गायब हो गया था । घास भी सूख गयी थी । कांटेदार कैक्टस जरूर कुछ बच रहे थे । एक कैक्टस में पीले रंग का छोटा सा फूल खिला हुआ था । ऊपर अनगिनत गुलमोहर ! नीचे सिर्फ एक पीला फूल ।

घर पर सारे बर्तन-भांडे, खाली पड़े थे । बच भी रहा तो कितना । सब्जी तो मिलती थी, पर क्या होता । पकाने के लिए नमक तक नहीं । मिर्च भी नहीं । और तो और, मूंगफली का तेल भी अब महंगा हो गया है । वजह ! अब गाड़ियां डीजल के बजाय मूंगफली के तेल से चलने लगी हैं । बस का किराया अब दुगुना हो गया है । मूंगफली के तेल से गाड़ियां जो चल रही हैं । जब से मूंगफली के तेल से चलने लगी हैं, तब से घर पर कुछ पके या न पके पूरी सड़क में रसोई की गंध आने लगी है । पूरे शहर की हवा में जैसे पकौड़े तलने की गंध भरी है । बस में फुंकने वाले तेल का आधा हिस्सा तो धुंआ बन जाता है । पूरे शहर में तेल का धुंआ भर गया है । पकौड़े, सेव की गंध !

नागपुर से आये, शरणार्थी अब भी पकौड़े बेचते हैं । उनकी चीजों को होटल वाले खरीद लेते हैं, थोक में । इसमें हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं । खाना सभी को खाना है ।

पिताजी के दफ्तर में कई उलझनें हैं । पिताजी के बॉस अब कोई मुसलमान हैं । उन्हें उर्दू के अलावा और कोई भाषा नहीं आती है । दफ्तर का काम वह उर्दू में ही करते हैं । उन्हीं की तरह और भी कई लोग रेलवे में भर्ती हो गये हैं । अब तक रेलवे की अपनी अलग धाक थी । वहां गोरों के अलावा, तमिल और तेलुगु भाषी भी बहुत संख्या में थे । पर अब वहा भी निजाम की चलने लगी है । इन नये आये मुसलमानों में कुछ बंबई से और कुछ पटना से हैं । दोनों की उर्दू अलग है । दोनों, एक दूसरे की उर्दू समझ नहीं सक्ते । पिताजी तो डरे हुए हैं । पर क्यों, कुछ बोल नहीं पाते ! पिताजी की छड़ी, एक दिन पुलिस वाला छीनकर ले गया । वह तो पिताजी को पुलिस स्टेशन तक खींचकर ले गया । उसका आरोप था कि पिताजी खतरनाक हथियार लेकर चलते हैं । स्टेशन के इंसपेक्टर ने पिताजी को धमकाकर छोड़ दिया । पर पिताजी की छड़ी वापस नहीं की । घर पर और भी छड़ी हैं । पर पिताजी अब छड़ी लेकर नहीं चलते । उन्हें छड़ी के बगैर चलते देखकर अजीब-सा लगता है । वैसे पिताजी इधर कम ही निकलते हैं । घर से अब कोई भी बाहर नहीं निकलता । आज नागरत्नम् घर से बाहर अकेली निक्ली है । वह बला की साहसी है । घर पर

बिना किसी को बताये ही निकली होगी। आजकल इस तरह बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं।

बगल वाला कासिम, पिताजी का नाम लेकर पुकार रहा था। चंद्रशेखर ने बाहर झांककर कहा, 'पिताजी अभी ऑफिस से नहीं लौटे हैं।'

कासिम ने कहा, 'हमारे घर में पानी नहीं आ रहा है। क्या गोलमाल किया है तुम लोगों ने ?' कासिम घर पर होता तो पता नहीं चलता। उसका रेडियो चीखता तो लगता वह घर पर है। पर इधर कुछ दिनों से वह भी चीखने लगा है। पिताजी को देखकर चीखता है, धमकाता है।

'हमने तो कुछ भी नहीं किया है। हमारे घर पर भी पानी नहीं आ रहा।' चंद्रशेखर बोला।

'कैसे नहीं आ रहा ? वहां पानी गिरने की आवाज साफ सुन रहा हूं। दखल-अंदाजी कर रहे हो ?'

'कुछ भी नहीं है।'

वह बात पूरी करता उसके पहले ही वह दीवार फांदकर आ गया। चंद्रशेखर को परे धकेलकर चप्पल पहने ही घर के भीतर चिल्लाता हुआ गया। चंद्रशेखर भी उसके पीछे-पीछे गया। कासिम उनकी रसोई, पूजाघर से होता हुआ पिछवाड़े नल तक गया। लांसर बैरक्स की बनावट कुछ ऐसी है। मेन पाइप लाइन से एक पाइप दोनों घरों में फिट है। उसी में एक टोंटी इस ओर तथा दूसरी ओर लगी है। पहले तो पानी ढंग से आता भी था, पर इन दिनों पानी कम ही आता है।

कासिम नल के पास गया।

'यह क्या ?' उसने पूछा।

चंद्रशेखर चुप रहा। मां डरती हुए रसोई से झांकने लगी।

'नल हर वक्त खुला क्यों रहता है' कासिम ने नल बंद किया, पूरा जोर लगाकर बंद किया। फिर पिछवाड़े का जायजा लिया। भैंस के लिए बनी हौदी उसकी आंखों में पड़ गयी।

'यहां इनसानों के लिए पानी नहीं है और आप हैं कि जानवरों को पानी पिला रहे हैं। आज रात तक यह भैंस यहां से ले जाओ।'

मां बाहर आयी और तमिल में शांत भाव में बोली, 'हम भैंस को पानी नहीं पिलाते। जूठन ही पिलाते हैं।'

कासिम मां की ओर देखकर चिल्लाया, 'यह क्या तुम्हारी अपनी जागीर है ? रेलवे क्वाटर्स में कहीं भैंस पाली जाती है ? मैं इसकी रिपोर्ट करूंगा और तुम लोगों का बोरिया-बिस्तर बाहर फिंकवा दूंगा। समझे !'

कासिम जाते-जाते चंद्रशेखर से बोल गया, 'पिताजी आयें तो उनसे कहना, मुझसे मिल लें।' तभी भैंस जाने क्यों रंभायी ? कासिम दुबारा भीतर आया और उसने भैंस को एक लात जमायी। उसके जाने के बाद चंद्रशेखर ने दरवाजा भिड़ा दिया। कासिम के घर के बाहर प्यारी बेगम खड़ी थी। चंद्रशेखर को देखकर मुस्करायी। शायद, उसे अपने पिताजी के इस तरह आकर चिल्लाने की बात मालूम ना हो। उसके पिताजी भी ऐसा व्यवहार पहले कहां करते थे। चंद्रशेखर ने सिर झुकाकर दरवाजा उढ़का दिया।

इसी शहर में उनका झगड़ा कितनी बार कितने ही लोगों से हो चुका है। कभी महरी से, तो कभी दूध वाले से, कभी जमादारिन से या कभी बढ़ई, दर्जी या तांगेवाले से वे झगड़ चुके हैं। कितनों से उनका झगड़ा कितनी बातों पर हो चुका है। कासिम के परिवार वालों से सालों पहले झगड़ा हो चुका है। कासिम की लड़की का नाम 'सुअरिया' तभी से पड़ा है। पर कासिम आज तक किसी झगड़े में नहीं पड़ा। पर आज वह भी आ गया है झगड़ा करने।

मां और बेटियां सिमटी, सहमी थीं। पिताजी जब घर लौटे, तो मां बोली, 'आज तक तो बाहर अत्याचार हो रहा था, अब घर पर भी होने लगा। हम भैंस का क्या करें, शहर के अधिकतर दूध वाले भाग गये। भैंस अभी भी दूध दे रही है। कम से कम पांच महीना और देगी।'

'उसने बुलवाया है, तो देख आऊं।' पिताजी बोले। उनका चेहरा फक पड़ गया था।

पिताजी ने धीमे से पुकारा, 'मिस्टर कासिम।' दुबारा आवाज लगायी, 'मिस्टर कासिम।' कोई उत्तर नहीं आया, तो वे गेट खोलकर कासिम के दरवाजे के पास जाकर आवाज देने लगे, 'मिस्टर कासिम।'

कासिम कुछ हिचका, फिर उसने पिताजी को भीतर बुलाया। चंद्रशेखर का पूरा परिवार खड़ा तमाशा देख रहा था।

काफी देर तक केवल कासिम की आवाज ही सुनाई देती रही। पिताजी भी कुछ बोले। पिताजी जब कासिम के घर से निकले, तो उनके पसीने छूट रहे थे।

'वह ठीक तो कहता है। हमें नल खुला नहीं रखना चाहिए। पानी भर लो और नल बंद कर दो।' पिताजी ने कहा। किसी ने जवाब नहीं दिया। नल में पानी ही चंद मिनटों के लिए आता है। उसे खोलने या बंद रखने से क्या फर्क पड़ता है ?

मां ने पूछा, 'भैंस के बारे में बात की ? फिर बोलीं, अब भैंस भी क्या इससे पूछकर रखें।'

'चच्, थोड़ा धीमे बोलो।' पिताजी बोले।

'मैंने कहा है, कि हम आइंदा भैंस को पानी नहीं पिलायेंगे।'

बहरहाल नल खोला ही नहीं गया। न उसे चंद्रशेखर खोल पाया, न ही पिताजी कासिम ने पूरी ताकत के साथ बंद किया था उसे। मां ने पूछा, 'अरे, हथौड़ा ठोंक दो तो खुलेगा न।' पर हथौड़े से खोलने के बाद पता नहीं क्या-क्या बात हो जाये ?

पिताजी दुबारा कासिम के घर गये और उन्होंने आवाज लगायी, 'मिस्टर कासिम।'

कासिम ने तुरंत आने से इन्कार कर दिया।'अभी जल्दी क्या है। कल आकर खोल दूंगा।' वह बोला। सो कल सुबह पिताजी को दुबारा उसके घर जाना होगा।

राशन में चीनी लेने का वह आखिरी दिन था। रोज दुकान का चक्कर लगाता रहा है वह। चीनी आयी नहीं। आखिरी दिन आ भी गयी तो वह सेर भर ही देगा। अगर आज़ वह चला गया, तो शायद सेर भर चीनी मिल जाये।

मां बोली, 'तू भी पिताजी के साथ जा न।' वह चुपचाप पिताजी के पीछे-पीछे निकल आया।

लांसर बैरक्स के कई घरों में ताला पड़ा था। नाग भूषणम् पुलिस परमिट के बगैर ही रेलवे पास लेकर कहीं चले गये हैं। जाफ़र अली, मन्नास और नासिर के घर पूरी तरह भरे थे।

चंद्रशेखर और उसके पिताजी मनोहर टाकीज़ वाली गली से नहीं निकले। चार्लस रोड से होकर रेजीमेंटल बाजार होते हुए दूर पुलिस चौकी की तरफ से निकले। पुलिस चौकी शांत थी। वहां एक ट्यूब लाइट जला करती थी। अब नहीं हैं। सिकंदराबाद शहर में अब तेज रोशनी नहीं होती। बाकी बत्तियों को काले कपड़े से ढंक दिया गया था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान इसी तरह सड़क की बत्तियों को काले कपड़े से ढंक दिया गया था। हिंदुस्तानी जहाज, सिकंदराबाद या हैदराबाद पर हमला बोल सकते हैं। निजाम और हिंदुस्तानी सरकार के बीच अनुबंध को खत्म होने में अभी भी छः महीने बाकी थे। पर हैदराबाद की हालत कुछ ऐसी ही थी, जैसा कि युद्ध के दौरान होता है। शहर की हालत भी हूबहू वैसी ही थी।

राशन की दुकान तक जाने के लिए राजस्थानी तेल की दुकान से गुजरना होगा। मोंडा खाली पड़ा था। तेल की दुकान बंद थी। उस दुकान के आर्य समाजी लड़के को एक दिन पुलिस वालों ने जमकर पीटा था। उस रोज चंद्रशेखर तेल लेने गया था। तेल तो नहीं ले पाया, घायल पड़े लड़के को ही देख सका था।

चंद्रशेखर चुपचाप पिताजी के साथ चल रहा था। दो साल पहले तक यूं पिताजी के साथ मोंडा तक आना एक सुखद अनुभव लगता था। कितनी ही बातें वे इस बीच

कर डालते थे। कितने लोग मिला करते। पहले सड़क के बीचों-बीच, फिर कुछ किनारे, फिर और किनारे होते-होते वे गली के नुक्कड़ तक पहुंच जाते और बातें जारी रखते। चंद्रशेखर को यूं खड़े-खड़े बातें सुनने में रस कतई नहीं आता। पर कई नयी बातें वह सीखता। दोनों इधर लगभग दो मील चलकर आये हैं। पर एक भी परिचित नहीं दिखा।

राशन की दुकान वाले ने झोला लिया और पड़ोस में घुस गया। रुपये और कार्ड वे पहले ही दे चुके थे। थोड़ी देर में, वह एक पुड़िया लेकर निकला। महीना भर अब इतनी-सी चीनी में ही चलाना है।

'क्यों भाई, चावल हैं क्या ?'

'पांच सेर तो मिल जायेगा ना ?' पिताजी ने तेलुगु में पूछा।

'चावल है तो पर अच्छा नहीं है। देखा जाये तो रेलवे के राशन में अच्छा चावल मिलता है।'

'अरे हमारा चावल भी इतना ही घटिया है भाई, एकदम लाल। ऊपर से कंकर-भूसी। सभी को दस्त लग गये। अब हम भी मक्के की रोटी खाने लगे हैं। पर क्या करें भाती ही नहीं।'

दुकानदार धीमी आवाज में बोला,'अब यहां राशन नहीं आता साब। हवाई जहाज से बंदूकें और टैंक ही उतरते हैं। आज भी मलकपेठ में गोरों का जहाज आकर उतरा है।'

'अच्छा !'

पिताजी को ये बातें मालूम थीं। चंद्रशेखर भी जानता ही था। सिडनी काटन नाम का एक विदेशी तस्कर निजाम की सेना के लिए बाहर से हथियार लेकर आता है। पहले तो अफवाह इतनी ही थी कि उसने दो तीन-बार ऐसा किया है। पर अब जाने कितनी बार। यह सिडनी काटन एक टैंक हवाई जहाज में लेकर आया है। अब लोगों में आतंक छा गया है। सिकंदराबाद से बीस मील दूर स्थित एक गांव के लोगों को सबक सिखाने के लिए कासिम रिज़वी के आदमियों ने हैदराबाद पुलिस के चार ट्रकों को साथ लेकर, एक पूरा बाजार जला डाला था। घर, दुकानें लूटी गयीं। तीन आदमी मार डाले गये। चालीस से अधिक लोगों को चोटें आयीं। पता नहीं, कितने घायल हुए होंगे। औरतों में सबसे अधिक आतंक छा गया।

पिताजी चीनी लेकर तुरंत लौटना नहीं चाहते थे। इतनी दूर आये हैं तो कुछ सब्जी भी लेते ही चलें। चंद्रशेखर और उसके पिताजी चौपाल पर चढ़कर सब्जियां खरीदने लगे। पिताजी बाजार की ओर गये। बाज़ार के प्रवेश द्वार के ऐन ऊपर एक घड़ियाल लगा हुआ था। घुसते ही दोनों ओर हलवाई की दुकानें थीं। एक का नाम था,'भारत

भवन', दूसरे का नाम था, 'शोलापुरवाला ।' 'भारत भवन' तो बंद हो चुका । शोलापुरवाला का धंधा बहरहाल चल रहा था । पिताजी ने छः आने की मिठाई ली । उसे सोहन हलवा कहते थे । पिताजी का ऑफिस से लौटना, कासिम के कारण उत्पन्न तनाव, पिताजी का कासिम के दरवाजे पर 'मिस्टर कासिम' की गुहार लगाना, बंद पड़ी तेल की दुकान के आगे एक मिनट रुकना, राशन में चावल नदारद, बंदूकों वाली सूचना—पता नहीं इन सारी घटनाओं के बीच मिठाई खरीदने का, कौन-सा तालमेल बैठता है ?

पिताजी ने दुकानदार से थोड़ी खुरचन ली और चंद्रशेखर को दे दी । चंद्रशेखर ने उसे मुंह में घोल लिया । जब वह छोटा था, तो इन खुरचनों के लिए कितना ललचाता था । अब तो उसकी मूंछें भी उग आयी हैं । पर पिताजी अब भी ठीक वैसा ही करते हैं ।

जब वे दुकान से निकलने लगे, तो पिताजी ने पूछा, 'कैसा लगा ?'

'अच्छा लगा ।'

डाक्टर पुरुषोत्तम अपनी डिस्पेंसरी बंद कर रहे थे । पिताजी को देखकर बोले, 'एक मिनट मि० अय्यर ।'

डाक्टर साहब ने दुकान के आगे सारी पटरियां फिट कर दी थीं । बस दो पटरियां और खड़ी कर दें, दुकान बंद !

पिताजी पहले तो खड़े रहे । फिर उन्होंने एक पटरी उठाकर दी । चंद्रशेखर ने ताला हाथ में ले लिया । तीनों ने मिलकर सारी पटरियां बैठायीं । दुकान पर ताला लगाया । डाक्टर पुरुषोत्तम अपनी ढीली-ढाली पैंट, नेकटाई से कसे रहते । आज भी वे उसी पोशाक में थे ।

डाक्टर साहब पिताजी के साथ बातें करते आगे निकल गये । चंद्रशेखर पीछे-पीछे निकला । डाक्टर साहब अपनी तकलीफें पिताजी को सुना रहे थे । आदत-सी पड़ गयी है इन तकलीफों की । उनको छोड़कर उनकी पत्नी, बेटा, बहू और बच्चे चले गये हैं । उन्हें भी चलने को कहा था, पर भला वे डिस्पेंसरी छोड़कर कैसे जा सकते थे ? पहले दुकान पर एक छोकरा काम करता था । वह भी जाने कहां भाग गया । डाक्टर खुद अब दुकान में झाड़ू लगाते हैं, मेज कुर्सियां पौंछते हैं । इस उम्र में उनसे ये सारे काम नहीं होते । पिछली रात एक पटरी उन्होंने अपने पैर के अंगूठे पर गिरा ली थी । घर की हालत तो और भी खस्ता है । बस महरी के भरोसे ही घर चलता है । पर वह बहुत चालू है । पता नहीं, किस-किस को लाकर खाना खिलाती है । आजकल तो राशन-पानी मिलना ही मुश्किल है । ऐसे में भला यह सब कैसे चलेगा । कुछ कहें तो भाग जायेगी । उन्होंने उम्र के

पचास वर्ष बीवी-बच्चों की सेवा में गुजारे हैं। उनकी चिंता में घुले हैं। सबको पाला-पोसा है। आज इस उम्र में, उन्हें अकेला छोड़कर सब चले गये हैं। यहां कौन उन्हें खा लेगा। यूं भागना ठीक है क्या ? अरे बेवकूफ ही भाग रहे हैं। भागकर भी कहां जायेंगे ? वहां भी रह पायेंगे क्या ? कभी-न-कभी तो लौटना ही होगा न !

चंद्रशेखर और उसके पिताजी ने डाक्टर पुरुषोत्तम को उनके घर जाकर छोड़ा। वह घर के भीतर चले गये। लगा जैसे उस घर ने उन्हें लील लिया हो।

वे फिर से रेलवे स्टेशन आये। रेजीमेंटल बाज़ार पुलिस चौकी से होकर ही वे घर लौटे। बाहर घूमने के कारण तनाव कम हो गया था। बाप-बेटे ने आपस में बातें नहीं कीं। पर इसका कोई विशेष कारण नहीं था।

मई की रात सुखद थी। पता नहीं, किन-किन अदृश्य स्थानों से रात की रानी की गंध आ रही थी। उसकी गंध तेज हो तो कहते हैं आसपास कहीं सांप रहते हैं। सांप के पास कच्चे आलू की महक आती है। पता नहीं, कहां से यह महक आती है। पर इस वक्त तो फूल की महक ही आ रही थी। गीस हाई स्कूल से लेकर लांसर बैरक्स तक हवा में यही गंध डोल रही थी। यह गंध पक्षपात नहीं करती। इसे स्वतंत्रता से भी कुछ लेना देना नहीं। न ही परतंत्रता से। किसने रखा है इतना प्यारा नाम ? रात की रानी ! कितना सटीक नाम है !

वह जब घर पहुंचा तो नल्लगुट्टा सैयद बैठे थे। पिताजी को देखकर बोले, 'तुम इतने बेवकूफ क्यों हो ? तुम्हारी बीवी कह रही थी कि पड़ोसी यहां चिल्लाकर गया है। अरे, उसे पानी नहीं मिलेगा तो चिल्लायेगा नहीं क्या ? तुम अब भी उसकी अग्रहास वाली तर्ज़ पर रहना चाहते हो ! क्यों बे छोकरे ! पढ़ाई छोड़ रखी है न ! लोगों की बातों में काहे आते हो ? लोगों को तो खुशी होती है, जब शहर के लोग आपस में झगड़ें। पर तुम लोगों की अक्ल को क्या हुआ ?'

पिताजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। चीनी और सब्जी का झोला रसोई घर में रख कर लौटे। सैयद के पास कुर्सी डालकर बैठ गये। सैयद अभी भी बोल रहे थे, 'क्यों यार, सुना है, तुम्हारे रेलवे वाले बहुत तंग कर रहे हैं। पता नहीं, कितने लोग बेचारे घर-बार छोड़कर जान बचाने यहां भाग कर आये हैं। उन्हें रेलवे वाले नहीं लेना चाहते। रेड्डी और नायडू लोगों का काम है यह। क्यों बे, रेलवे क्या तेरे बाप का है ? अरे, सभी कुछ तो निजाम का है। उनके ही आदमियों को वहां जगह न मिले, यह कैसा अंधेर है ? मज़हब से भी नहीं डरते तुम लोग।'

'और हां, तुम बताओ, तुम कैसे हो ?' पिताजी ने सवाल किया।

'मुझे क्या होगा ? मजे में हूं ! नल्लगुट्टा वालंटियर कोर का कप्तान हूं अब मैं !

देखा, कितना सम्मान मिला है। वहीं कडलूर या मायवरम् में पड़ा रहता तो भला इस उम्र में मुझे कौन पूछता !'

'कुछ खाओगे ? मक्के की रोटी है। पर सब्जी बैंगन की बनी है। तुम्हें पसंद है न !'

'तुम्हारे आने के पहले ही मैं मांगकर खा चुका हूं। तभी भाभी ने नल वाले झगड़े का जिक्र किया था। नल तो मैंने खोल दिया है। बेकार ही बगल वालों से झगड़ते हो। तुममें अभी भी बचपना बाकी है।'

'घर पर सब ठीक तो हैं न ! बड़े को नौकरी मिल गयी क्या ?'

'नौकरी की क्या कमी ! अरे मद्रास थोड़े ही है यह। इस देश में जो भी आता है, उसे नौकरी मिल ही जाती है। बेटा भी मेरे साथ वालंटियर कोर में है। पर तुम उधर दिखे ही नहीं !'

'तुम्हारे घर तो पिछले हफ्ते मैं आया था। तुम बाहर गये हुए थे।'

'रिज़वी साहब की मीटिंग में गया था। तभी तो पता लगा, इन कांग्रेसियों ने कितना अत्याचार फैलाया है। हमारे पी. एम. ने हिंदोस्तान सरकार से शिकायत की है इसकी। इतने सालों से खाने-पीने की चीजें आती रही हैं, अब एकदम से रोक दी गयीं, सो लोग बेचारे कहां जायेंगे। फिर वे अपना हवाई जहाज हैदराबाद के ऊपर उड़ाते हैं। उसकी शिकायत की, तो जानते हो क्या जवाब दिया उन्होंने ?'

'मुझे तो नहीं मालूम ! आजकल अखबार में ये बातें कहां आती हैं।'

'अरे हमने तो यही पूछा था कि तुम इन लोगों को भूखा काहे मार रहे हो, तो कहते हैं, तुमने पाकिस्तान को काहे बीस करोड़ रुपये दिये ? काहे तुम लोग सभा करते हो। यह क्यों करते हो, वह क्यों करते हो। अरे सियार भी कभी बकरी का न्याय कर सकता है ?'

'यह बीस करोड़ वाली बात

'पाकिस्तान को हमारे निजाम ने कर्ज दिया है। क्यों यार, वह भी मुसलमानों की सल्तनत है। आपस में एक दूसरे की मदद न करें तो कहां जायें। और ये पंजाबी ! अरे इन्होंने उस शहर को जलाकर तबाह कर दिया है और इधर भाग आये। आप चाहे जितनी बदतमीज़ी कर लें, पर पूछेंगे जरूर कि ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया ? मैं कहता हूं, पूछने वाले ये कौन होते हैं। एक बंदूक चली नहीं कि भागकर छिप जाते हैं, कायर कहीं के। अरे दुम हिलायी तो दुम कतरकर रख देंगे। हां, समझ क्या रखा है ?'

'देखो, सैयद भाई, मुझे भी थोड़ी-बहुत बातें मालूम हैं। यहां जब हिंदुस्तानी रुपया चल नहीं सकता, तो वहां की चीजें यहां आयेंगी ही क्योंकर ?

'अरे हमें हिंदुस्तानी रुपयों से क्या लेना-देना। यहां हाली रुपया तो कितनी पुश्तों

से चला आ रहा है। पहले गोरों के नोट चलते थे। उस पर तो भरोसा किया जा सकता था। पर ये सफेद टोपी वाले एकदम से कुर्सी पर आकर बैठ गये हैं, इन पर कौन भरोसा करे।'

'तुम्हें निज़ाम का मंत्री होना चाहिए था।'

'वह भी हो जाऊंगा किसी दिन। मैं इस ज्यादती पर अब और चुप नहीं रह सकता। मेरा तो खून खौल रहा है। कुछ तो करना ही होगा। यार, एक बात कहना चाहूंगा। मन में ही रखना। हमने तो सोचा था, कि ये कम्यूनिस्ट चोर लुटेरे और गुंडे हैं। पर ऐसा कतई नहीं हैं। वे लोग इन सफेद टोपी वालों की चलने नहीं देते। वे तो जानते हैं न इन कांग्रेसियों की औकात ! आज अगर निज़ाम और हिंदुस्तानी सरकार के बीच जंग छिड़ जाय तो ये कम्यूनिस्ट ही हमारा साथ देंगे। सारी बातें तय हो गयी हैं। तुम किसी को बताना मत।'

16

पिछले चार दिनों से रेलों का आना-जाना बंद हो गया था। चिट्ठी-पत्री तार और हिंदुस्तानी पत्रों का आना-जाना भी बंद। अब हैदराबाद एक टापू बन गया था, जिसके चारों ओर जल नहीं थल था।

लेकिन बात उससे भी अधिक गंभीर है, इस बात का पता कासिम के रेडियो से ही लगा। पाकिस्तान के कायदे-आजम मुहम्मद अली जिन्ना नहीं रहे। गांधी की हत्या को अभी आठ महीने भी तो नहीं हुए। कासिम के रेडियो ने कायदे-आजम की मौत पर शोक मनाया। समाचार-पत्र बहरहाल सतर्क थे। हैदराबाद की गलियों में एक मुसलमान पत्रकार का खून बहकर जम गया है। शोयबुल्ला खान के हाथ काट डाले गये। ये ही वे हाथ थे जिन्होंने 'इमरोज' में लिखा था, 'आखिरकार हैदराबाद को हिंदुस्तान से मिलना ही होगा। किसी हिंदू ने लिखा होता, तो जेल हो जाती। पर मुसलमान ! क्या इतनी बेवफाई कर सकता है ? वह क्या, वैसा सोच भी सकता है ? देशद्रोहियो, सावधान ! अगर किसी ने मुंह खोलने की जुर्रत की तो उसका भी यही अंजाम होगा।'

चंद्रशेखर को लगा, इससे भी अलग कोई खास बदलाव है। मां ने उसे उससे भी पहले महसूस किया है। रेडियो ने रोना-धोना बंद कर दिया। दिन भर, बैंड-बाजे की आवाज आने लगी है। 'झंडा ऊंचा रहे हमारा'-जैसे नारे बुलंद हो रहे हैं। अब गाने भी क्या सुनाई देते हैं, 'हंसकर लिया है पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिंदोस्तान।'

लड़ाई ! तो सचमुच जंग छिड़ गयी है क्या ?

कोई घर से बाहर नहीं निकला। जिन्ना की मौत पर पिताजी की छुट्टी थी। सोमवार को छुट्टी थी ही। उसी शाम लड़ाई की बात भी मालूम हो गयी। हिंदुस्तानी फौज, पश्चिम से और दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र से होकर हैदराबाद राज्य में प्रवेश कर गयी है। सभी शहरों में ए. आर. पी. कार्रवाई लागू की जायेगी। रात की बत्तियां गुल !

मां ने सामने और पिछवाड़े के दरवाजे पर दो-दो ताले लगाने शुरू कर दिये। घर

पर खाने को चावल का एक दाना नहीं। सब्जी नहीं। पानी तो आता ही नहीं। अगर अब एक दिन भी पानी नहीं आया तो बेमौत मारे जायेंगे। न कोई नहा पाया, न मुंह धो पाया। पिछ्वाड़े दिशा मैदान जाने का तो सवाल ही नहीं उठता। बस भैंस अभी थोड़ा दूध जरूर दे देती। दूध-दही का सहारा न होता तो सब फाके ही करते।

पर मंगलवार को पिताजी दफ्तर गये। दफ्तर न जायें, तो क्या पता कहीं छुट्टी ही कर डालें। तीस साल की सर्विस वाले सात, आठ आदमियों की छुट्टी कर दी गयी थी। कहीं डिसमिस कर दिया गया, तो रिटायरमेंट के बाद मिलने वाले पैसों की भी छुट्टी। कोई दूसरी ढंग की नौकरी भी नहीं मिलेगी। बुढ़ापे में बाल-बच्चों के साथ सड़क पर आना होगा।

लांसर बैरक्स में कोई खास बदलाव नहीं आया। डेरिंस और मॉरिस अब भी शाखों पर उछलते रहते हैं।

चंद्रशेखर भी बरगद तक जाना चाहता था। तभी नल में पानी आने लगा। उसने पानी भरने में मां की मदद की। पड़ोस में कासिम के घर वाले भी पानी भर रहे थे। रेडियो इस वक्त बंद था। पहले रात-दिन युद्ध संगीत बजता रहा था। आज जाने क्यों शांत पड़ा था।

'तुम्हें कुछ लगता है ?' मां ने पूछा।

'क्या ?'

'यही कि कासिम के घर ढेर सारे लोग आये हुए हैं।'

मां ठीक कहती हैं। कासिम के घर कई नये चेहरे देखने में आये हैं। पर कब आये हैं ? कल दिन के वक्त तो कतई नहीं आये होंगे। ज़रूर रात में आये होंगे। क्यों आये हैं ? इस वक्त तो कोई त्यौहार भी तो नहीं।

मां मना करती रहीं, पर चंद्रशेखर बरगद के नीचे चला गया। मॉरिस ने ही पहले सवाल किया, 'कैसे हो ?'

'तुम्हें कुछ खबर है ?'

'कैसी खबर ?'

'तुम्हारे पिताजी ड्यूटी पर नहीं गये क्या ?'

'रेल चले तब न ड्यूटी होगी।'

'पर मेरे पिताजी तो गये हैं।'

'तेरे पिताजी दफ्तर में काम करते हैं न !'

'तो तुम लोगों को कुछ भी खबर नहीं।'

'लड़ाई की न ! पता नहीं । वैसे सुना है कि हिंदुस्तानी फौज भीतर घुस गयी है । आज मैं शहर जाऊंगा देखने ।'

पर तभी मॉरिस के पिताजी खबर ले आये । हिंदुस्तानी फौज हैदराबाद शहर की ओर बढ़ रही है । जहां कहीं लड़ाई हो रही है, वहां निजाम की फौज उल्टे पांव भाग रही है या आत्म-समर्पण । निजाम की फौज में लड़ने वाले मैले कपड़े पहने रजाकार ही हैं । आदिलाबाद के पास छुरी-चक्कू के बल पर ही ये लोग टैंकों का सामना करने गये थे । दस मिनट में इन दो हजार रजाकारों को टैंक ने निगल लिया । पर हैदराबाद रेडियो है कि हर जगह अपनी ही झूठी विजय की कहानी सुना रहा है । कहता है, मछलीपत्तन पर उनका कब्जा है ।

'वहां रजाकारों के साथ कम्यूनिस्ट भी लड़े थे क्या ?'

चंद्रशेखर के पिताजी एक मिनट तो चौंक गये । फिर बोले, 'मुझे तो मालूम नहीं, पर बरसों से पुलिस और मिलिट्री वाले मिलकर उनका सर्वनाश कर रहे हैं । वे रजाकारों के साथ क्यों मिलेंगे ?'

'पर सैयद ने कहा था ।'

'क्या तुम सोचते हो कि सैयद का दिमाग ठिकाने पर है ?'

सिकंदराबाद हैदराबाद शहरों में कर्फ्यू लग गया है । शाम छ: बजे के बाद अगर सड़क पर कोई दिखा तो बस गोली मार दी जायेगी । मछलीपत्तन पर कब्जा करने के बाद अब हैदराबाद की फौज दिल्ली की ओर बढ़ रही है । इन सारी खबरों के बीच कर्फ्यू की घोषणा । हिंदुस्तानी एजेंट जनरल जनाब के. एम. मुंशी को सुरक्षा दी गयी है, ताकि लोग गुस्से में उन पर आक्रमण न कर बैठें । उनके बंगले पर भी चौकीदार तैनात हैं ।

छ: बज गये पर चंद्रशेखर लांसर बैरक्स के चक्कर लगाता रहा । हिंदुओं के ही नहीं मुसलमान और ईसाइयों के घर भी बंद थे । एकाध रोशनी की लकीर के अलावा सारा शहर अंधकार में डूबा था ।

आक्सफोर्ड सड़क सीधी वज़ीर सुल्तान के बंगले तक फैली थी । बंगले के पीछे छिपने वाला सूरज मानो निमंत्रण दे रहा था । सारा देश जल रहा है, पर इस अस्त होने वाले सूरज के भरोसे बाहर कैसे चला जाये ?

चंद्रशेखर सूरज का भरोसा करता है । कर्फ्यू के बारे में वह अधिक कुछ नहीं जानता । गोली वे कैसे मारेंगे ? रिवाल्वर से या बंदूक से ? पर वे निशाना तो लगायेंगे न । तब तक आदमी भाग नहीं जायेगा ! मैदान हो, या सीधी लंबी सड़क, तो भागने वाले को मारा जा सकता है । पर गलियों वाली सड़क हो तब ! वह

किसी घर में छिप जाये तो क्या उस मकान पर गोली चलायेंगे ? मकान पर कहां गोली चलायेंगे ? दरवाजे पर ! खिड़की पर ! या फिर छत पर !

मगर आक्सफोर्ड सड़क पर खड़ा-खड़ा वह क्या खाक जान पायेगा ? आक्सफोर्ड सड़क पर पुलिस वाला तक नहीं दिखता । क्लाक टावर के पास भले ही दिख जाये । अब इधर कुछ दिनों से क्लाक टावर के पास भी पुलिस वाला नहीं दिखता । पुलिस वाला क्या, कोई नहीं दिखता !

एक बस खड़खड़ाती हुई क्लाक टावर के आगे निकल गयी । पूरी बस में सिर्फ दो पुलिस वाले थे । उनमें से एक ने चंद्रशेखर को देख लिया ।'जाओ ! घर जाओ !' वह चीखा । बस पूरी तेजी के साथ निकल गयी । इतना धुआं छोड़ गयी पीछे कि लगा जैसे एक पूरी बारात का खाना पक रहा हो । कढ़ाही से निकलता मूंगफली तेल का धुआं । उसे हंसी आयी । कहां तो खाने की किल्लत, कहां मूंगफली के तेल का धुआं—क्या सोचने लगा है वह ?

चंद्रशेखर अपनी लंबी छाया को देखता हुआ घर लौटा । छाया, दस-बारह फुट की होगी । उसके पांव के नीचे से निकली जरूर है, पर स्वेच्छा से जाने कहां तक चली गयी है ।'छांह देखोगे तो दुबले हो जाओगे ।' किसने कहा था ? याद नहीं ! अरे हो जायेंगे दुबले तो हो जायें । छांह का पता नहीं कितने रहस्य खोलती है । वह उसके आगे फुदकती हुई जा रही है, मानो कुछ कहना चाहती है । पर उसकी भाषा वह समझ नहीं पाता । बताओ, बताओ न !

घर के भीतर जाने से पहले कासिम के घर को ठीक से देखा । कासिम के घर की खिड़कियों पर पटरियां ठोंक दी गयी थीं, ताकि वे खुल न सकें । घर के दरवाजे पर भी एक तरफ पटरी ठोक दी गयी थी ।

चंद्रशेखर एकदम भीतर नहीं गया । कासिम ने चंद्रशेखर को नहीं देखा । कासिम घर की दीवार के पास एक मिनट बैठ गया, फिर उठ गया । उसकी उम्र पचास-पचपन के आस-पास होगी । उठकर पजामे के नाड़े को ठीक करने लगा, तब उसने चंद्रशेखर को देख लिया । दो बार झुककर सलाम किया और घर के भीतर घुसकर दरवाजा बंद कर लिया । कासिम का घर शांत था ।

परंतु बुधवार के दिन शहर शांत नहीं था । हैदराबाद रेडियो पर समाचार भी नहीं आये । न ही विजय की दुंदुभी बजी । फिल्मी गाने ही बजते रहे । कुछ लोग बाहर दिख रहे थे । पुलिस वाले बस एकाध ही दिखे । वे भी कुछ सहमे से लग रहे थे । लोग झुंड के झुंड खड़े बातें कर रहे थे । पुलिस स्टेशन के सामने से ही साइकिल पर दो लोग चढ़कर निकले । पुलिस चौकी लगभग खाली थी । रेजीमेंटल बाजार

वाली चौकी पर बंदूकें दीवार पर लटकी रहती थीं। आज पता नहीं कहां गायब हो गयीं।

शहर में इतने लोग कहां से आ गये! उसे कुछ आश्चर्य हुआ। सड़कों पर पुरुष ही अधिक थे। वह भी हिंदू। चंद्रशेखर रेलवे स्टेशन के पास गया। बसें एक कतार में खड़ी थीं। छांह में लाल शर्ट पहने कुली चौपड़ खेल रहे थे। निजाम चुंगी घर की महिला अकेली बैठी हुई थी। एस. बी. जी. स्कूल बंद पड़ा था। स्टेशन के सामने की कई दुकानें बंद थीं। बस, दो ईरानी होटल खुले हुए थे। दोनों में ग्रामोफोन पर फिल्मी गीत बज रहे थे।

चंद्रशेखर स्टेशन रोड से होकर चलने लगा। इसके बाद पड़ता है के. ई. एम. हस्पताल। सामने की ओर शरणार्थियों का शिविर। यहां बाहर वाले कम ही थे। शरणार्थियों के शिविर से धुआं उठ रहा था। वे न तो किसी से बातें करते थे, न ही बाहर की दीन-दुनिया से उनका कोई लेना-देना था। अस्पताल के चारों ओर बंधे तार पर उन्होंने सूखने के लिए अपने कपड़े डाल रखे थे। फटे-पुराने कपड़े। उनकी आंखों की तरह ही उनके कपड़े और उनका रहन-सहन देखकर भी तरस आता। इस तरह के तीन फुटे शिविरों में रहते उन्हें भी साल भर होने को आया था।

एक शरणार्थी की आंख चंद्रशेखर की आंख से मिल गयी। वह स्नेह-भाव से मुस्कराया। हाथ में एकाध पैसा भी होता, तो उससे कोई खाने की चीज खरीद देता। पर इस वक्त उसकी मुस्कुराहट के प्रत्युत्तर में वह कुछ भी नहीं दे सकता था।

मोंडा का बाजार अब भी बंद था। पर लोग भीड़ की शक्ल में घूम-फिर रहे थे। दो दिन पहले, इस स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस वक्त किसी को कोई खबर नहीं है। पर इतना सब जानते हैं, हिंदुस्तानी फौज निजाम को धीरे-धीरे घेर रही है। अब सारी तकलीफें खतम हो जायेंगी। बस, एक हफ्ता और या हो सकता है एक महीना। बस।

इस नये विश्वास के बावजूद शहर ठीक-ठाक था। सब जैसे अनुशासन में ही जी रहे थे। क्या पता, उन्हें शक हो। लोग वैसे सतर्क भी हैं।

दिन भर सिकंदराबाद घूमने के बाद चंद्रशेखर शाम को घर लौटा। लांसर बैरक्स में रौनक थी। कासिम का घर खुला था, पर कासिम नहीं दिखा। कई छोटे-बड़े लोग जमा थे। सभी के चेहरों पर विनम्रता थी। उस घर के पुरुष, हर किसी को सलाम कर रहे थे।

रेलवे ऑफिस से ही खबरें मिल रही थीं। सूर्यापेठ-हैदराबाद सड़क पर हिंदुस्तानी फौजें बेरोक बढ़ती जा रही हैं। एकाध जगह विरोध हुआ भी तो मिनट भर में फौज

ने दुश्मनों को तितर-बितर कर दिया । औरंगाबाद में एक कॉलेज के प्रोफेसर सौ छात्रों के साथ डंडे लेकर रास्ते में अड़ गये । पहली ही बार गोलियां चलने पर बीस लड़के छिलरकर गिर पड़े । बाकी भाग निकले । प्रोफेसर पकड़ लिये गये, तो वे नारे लगाते रहे, 'आजाद हैदराबाद जिंदाबाद' ।/अब विरोध तो 'फिस्स' हो गया । चिंता अब सिर्फ उन हजारों राजनीतिक बंदियो की है, जो दस पंद्रह-महीनों से जेल में बंद पड़े हैं । रज़ाकारों ने उनका क्या हाल किया होगा ?

घर पर रेडियो से कोई आवाज नहीं निकली । बस लगातार एक ही आवाज, एक ही भिनभिनाहट । पिताजी ने बाहर आकर आवाज़ लगायी , 'कासिम ! मि कासिम ! चार-पांच बार पुकारने के बाद एक बुजुर्ग ने दरवाजा खोला, 'कासिम बाहर गये हैं । आपको क्या चाहिए ? मैं कर देता हूं ।'

'मुझे आपका रेडियो चाहिए ।' पिताजी बोले ।

'रेडियो ? ठहरिये पूछकर बताता हूं ।' वह भीतर चले गये ।

इस वक्त पिताजी के पास पूरा परिवार खड़ा था । बुजुर्ग दोबारा आये ।'रेडियो गड़बड़ है ।' वे बोले ।

'गड़बड़ है ? अरे, कल तो ठीक था ।'

बुजुर्ग धीमे से मुस्कुराये । उनके पीछे एक महिला की आवाज आयी, 'आप ही आकर देख लीजिए । ठीक हो तो ले जाइये ।'

'मैं देख आता हूं ।' चंद्रशेखर बोला ।

सभी चुप रहे । चंद्रशेखर ने दीवार फांदी । दरवाजे पर खड़े बुजुर्ग ने रास्ता दिया ।

उस घर में पैर रखते ही चंद्रशेखर का सिर भन्नाने लगा । उसकी सांस तेज-तेज चलने लगी । घर के हर कोने में लोग झुंड में बैठे थे । कमरे में बदबू फैली हुई थी । एक कोने में 'प्यारी' बेगम भी बैठी हुई थी ।

'यहां है ।' बुजुर्ग बोले । उस कमरे में अभी तक बत्ती नहीं जलायी गयी थी । चंद्रशेखर ने घूम कर देखा । कासिम की पत्नी ने स्विच दबाया । रोशनी में कमरा और भी भयंकर लग रहा था । कुछ औरतों ने परदा कर लिया । चंद्रशेखर ने रेडियो आन किया । उसकी बत्ती तक नहीं जली ।

उसने सारी सुइयां देख लीं । रेडियो को उसने कुछ पीछे हटाया । रेडियो के नीचे कांच के टुकड़े पड़े थे । उसे शक हुआ । रेडियो को पीछे से खोलकर देखा । दो वाल्व टूटे थे । किसी ने उसे जान-बूझकर तोड़ा होगा । वरना ये इस तरह नहीं टूटते ।

बुजुर्ग सहमे से खड़े थे । कासिम की पत्नी उसे ध्यान से देख रही थी ।

चंद्रशेखर ने दोबारा दीवार फांदी। घर पहुंचा। कासिम के घर की बत्ती बुझ गयी। मां ने पूछा,'क्या हुआ ?'

रेडियो बेकार है।' चंद्रशेखर बोला।

'कल तक तो बज रहा था।'

'अब नहीं बजेगा।'

बृहस्पति को सुबह भूसे की गाड़ी आयी। अमरूद बेचने वाला आया। बहुत दिनों बाद मक्का बेचने वाली औरत भी आयी। एक भिखारी आकर आधा सेर चावल बेच गया।

सड़कों में भीड़-भाड़ अब भी थी। बड़ी-बड़ी दुकानें खुली थीं। सब्जी की दुकान खुली थी। दर्जी की दुकान से लेकर नाई की दुकान तक खुली थी। चंद्रशेखर की पहचान वाले नाई ने आवाज लगायी।'मेरे पास पैसे नहीं हैं, ' चंद्रशेखर बोला।'कल दे देना, कौन-सी आफत आयी है ,' वह बोला। चंद्रशेखर के न करते रहने के बावजूद उसने खुशबू वाला तेल और पाउडर जमकर लगा दिया। उसकी दुकान पर बेजवाड़ा से निकलने वाला अखबार पड़ा था। तेलुगु जानता तो वह उसकी खबरें पढ़ सकता था।

कई बातें थीं। निज़ाम के सिपहसालारों ने युद्ध करने से मना कर दिया। शुरू से ही हिंदुस्तानी फौज की तुलना में इनके पास न तो हथियार थे न आदमी। आक्रमणकारियों को रोककर युद्ध करने लायक शिविर तक नहीं था। दक्षिणी पूर्वी प्रांत लगभग मैदान है। टैंक के सामने मैदान में क्या खड़ा हुआ भी जा सकता था ! पता नहीं पाकिस्तान क्या करने वाला है। पाकिस्तान शायद ही कुछ कर पाए। यू. एन. ओ. तक फरियाद पहुंची है। सदस्यों के ही माध्यम से यह संभव है। यह काम पाकिस्तान को ही करना होगा। नवाब मोइन नवाज जंग जो यू. एन. ओ. में प्रतिनिधित्व लेकर पहुंचे हैं सुना है ढेर सारा सोना खजाने से पार कर गये हैं। क्या यह सच है ? विश्वास तो नहीं होता। हम कुछ नहीं कर सकते। बस, अपनी खाल बचा लो।

लोगों की अफवाहें तो कभी बच्चों का खेल ही लगती रही होंगी। पर यह सच है। एक महीना या दस दिन तो क्या, बस एक हफ्ते बाद इसी जगह युद्ध भी हो सकता है। हिंदुस्तानी फौज चारों दिशाओं से हैदराबाद की ओर बढ़ रही है।

कल कम-से-कम कुछ पुलिस वाले तो दिखे थे, आज तो वे भी नहीं दिखे। वैसे भी हैदराबाद पुलिस विभाग में पिचानवे प्रतिशत पुलिस मुसलमान ही है। पर आज मुसलमान तो दिख ही नहीं रहे।

कई मुसलमान ऐसे भी थे जिन्हें छिपने में कामयाबी नहीं मिली थी। शहर के बीचों

बीच रेलवे स्टेशन था- उसके पास बड़े वाले अस्पताल के सामने एक पुराने चर्च के पास फुटपाथ पर सोने वाले शरणार्थी । आज भी उनकी झोंपड़ियों से धुआं उठ रहा था । उनके पास खाने को हो न हो वे चीजें वही बनाते और मुसलमान होटल में बेच आते । उन रुपयों से बेसन और मूंगफली का तेल लाते और फिर से खाने की चीजें बनाते । उनमें से एकाध वे खाते होंगे क्या ? पर उनको देखकर ऐसा तो नहीं लगता । चंद्रशेखर पहले दिन स्नेह भाव से मुस्कुराने वाले शरणार्थी को खोज रहा था । वह नहीं था पर और कई लोग थे । सब शांत थे । सारा शहर हलचल में है, पता नहीं ये लोग कैसे शांत रह लेते हैं । वे जैसे किसी घटना की प्रतीक्षा भी नहीं कर रहे । उनके लिए किसी भी घटना का जैसे कोई महत्व ही नहीं । अस्पताल के चारों और कांटों पर फैले कपड़ों में बच्चों के कपड़े ही अधिक थे । वे जैसे उन बच्चों के प्रति बेखबर ही थे ।

किंग्सवे वाली सड़क पर झुंड के झुंड खड़े होकर लोग बातें कर रहे थे । सिकंदराबाद के सोशलिस्ट लीडर महादेव सिंह का मकान यहीं पास में है । महादेव सिंह आठ महीने पहले गिरफ्तार हुए थे । इन आठ महीनों में तीन बार उनके परिवार वालों को उनसे मिलने की अनुमति दी गयी । पिछले दो महीनों से काफी कोशिश कर रहे हैं । न दिखें न सही, कम से कम उनकी खबर मिल जाये । पर सारे अधिकारी चुप हैं । मगर बाहर के कैदियों को हैदराबाद जेल में लाकर रखा जायेगा यह तय है । क्या पता इस बीच उन्हें ले भी आये हों । पंद्रह दिन पहले भी गुलबर्गा जेल में रजाकारों ने कांग्रेसी बंदियों को जमकर पीटा है । एक बंदी की तो मौत ही हो गयी । अब गुस्से में वे कुछ भी कर सकते हैं ।

शहर में साइकिल, तांगे और गाड़ियां ही दिख रही हैं । वह भी खाली । शायद शहर में किसी को इतनी फुर्सत नहीं है कि वह सवारी कर ले । हलवाइयों की दुकानें जल्दी ही खाली हो गयीं । पान चार रुपये में सौ के हिसाब से बिक रहे थे । बाकी व्यापारी जैसे फुर्सत में थे । सभी आस-पास के दुकानदारों से बात-चीत में लगे थे । आल इंडिया रेडियो ने हैदराबाद के आक्रमण का जिक्र करते हुए कहा कि वह मात्र पुलिस को सतर्क करने की कार्यवाई है । उसके अनुसार उनकी सेनाएं आगे बढ़ रही हैं । हैदराबाद रेडियो से अचानक साढ़े चार बजे एक मुख्य आदेश प्रसारित करने की सूचना दी गयी । फिल्मी गानों के बीच यह सूचना बार-बार दी गयी । पर लगा, जैसे लोगों पर इस सूचना की कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई । सभी जैसे जल्दी में थे । साढ़े चार तक एक बात फैल गयी –हिंदुस्तानी फौज पोंगीर पहुंच गयी हैं, हैदराबाद से बस तीन मील दूर ।

साढ़े चार बजे सूचना मिली। संक्षिप्त ! रात साढ़े सात बजे निजाम का फरमान जारी किया जायेगा। निजाम खुद इस फरमान को जारी करेंगे।

कर्फ्यू का कोई असर नहीं पड़ा। शाम साढ़े छ: बजे तक शहर की तमाम जनता बाहर निकल आयी। औरतें तो काफी संख्या में थीं।कुछ छोटे-मोटे व्यापारी, सब्जी वाले, चना-चबेना बेचने वाले, लाई पट्टी बेचने वाले। लगा उन्हें शांत जीवन पर ही भरोसा है। चार दिनों तक वे कितने शांत रहे हैं।

निजाम का फरमान लोगों ने घर पर तो नहीं सड़क पर ही अधिक सुना। सारी दुकानों मे रेडियो पूरे वाल्यूम पर खोल रखे थे। निजाम की आवाज शांत और साफ थी।'इधर हाल में हमारी सल्तनत और हमारी रिआया ने काफी मुश्किलें झेली हैं। इन बातों से सब वाकिफ हैं। मगर अब ये मुश्किलें हर हालत में खत्म हो जायेंगी। हमने चंद फैसले किये हैं। हमारे वज़ीरे आज़म और उनके हमदमों ने आज सुबह अपने-अपने इस्तीफे दे दिये हैं। हमने फैसला किया है कि अब हैदराबाद को हिंदुस्तान यूनियन के साथ मिला दिया जाये। हमारा पहला कदम यह है कि हमारी फौज के बीच मौजूदा जंग को खत्म कर दिया जाये। फौरन से पेश्तर एक बेहतर सिविल सरकार बनाने का हुक्म दिया जाये। फिलहाल बतौर हिंदोस्तानी सरकार के नुमाइंदे, हमारी हुकूमत चलेगी। रियासत में हालात पुरअमन बनाने की गरज से हमने ये हुक्म जारी किये हैं कि हमारे सियासी कैदियों को रिहा कर दिया जाये। इस साल के आगाज़ में जारी किये गये कर्फ्यू और हिफाजत से मुताल्लिक दूसरे हुक्म भी रद्द किये दे रहे हैं। हमें उम्मीद है कि हमारी रिआया हमारी बेमिसाल रियासत की इज्जत और आबरू पर हर्फ नहीं आने देगी। और इसे अपना फर्ज समझकर अदा करेगी। इस फैसले पर पहुंचने के लिए हम मशकूर हैं—हिंदुस्तान के गवर्नर जनरल और अपने अजीज दोस्त जनाब राजगोपालाचारी के और हिंदुस्तानी एजेंट जनरल जनाब के. एम. मुंशी के।'

भयंकर खामोशी के बीच इस फरमान को सुनने के बाद भी लोग जैसे उत्साह में नहीं थे। कहीं-कहीं कोने से एकाध नारे उठे'जय हिंद''स्टेट कांग्रेस जिंदाबाद' पर वे शीघ्र ही दब भी गये। चार दिनों बाद पहली बार चंद्रशेखर को डर लगा।

लोग एक दूसरे से बातें करने लगे थे और उसका भय घटने लगा था। निज़ाम ने रजाकारों के बारे में एक शब्द नहीं कहा। रिज़वी के बारे में भी चुप्पी साध गये। क्या हिंदुस्तानी सरकार के लिए ये बातें महत्वहीन थीं ? इतने दिनों लगातार अत्याचार करने वालों को दंड नहीं ? लाखों परिवारों के बलिदान का कोई महत्व नहीं !

लोगों ने यह भी कहा कि निजाम यह सब कैसे कह दें ! वह तो बस जरूरी बातें ही

बता सकता है। अब हैदराबाद हिंदुस्तानी यूनियन के साथ मिल गया है। अब आगे की कार्रवाई भारत सरकार करेगी। क्या पता कार्रवाइयां शुरू भी हो गयी हों। कल तक सारी बातें साफ हो जायेंगी।

कासिम का घर ज्यों का त्यों बंद था। सारी खिड़कियां बंद थीं। हवा के लिए चिमनी को छोड़कर कोई रास्ता नहीं था। तीस-चालीस लोग बंद कमरों में रह भी कैसे सकते हैं ! वह भी कितने दिन। सुना है दो सौ वर्ष पहले भी इसी तरह एक सौ छियालीस लोग बंद थे, जिनमें एक सौ तेईस की मृत्यु हो गयी थी।

मां बेखबर सो रही थी। घर पर सब सो रहे थे। और लोगों की तरह वे शहर से भागे नहीं। यहीं पड़े-पड़े पूरा साल गुजार दिया। अब कल से नयी दुनिया उभरने वाली है। क्या दुनिया भय और आतंक से मुक्त होगी ?

चंद्रशेखर को नींद नहीं आयी। वह बाहर आ गया। रात काफी सुहानी थी। सिकंदराबाद में अब दूसरी वर्षा-ऋतु प्रारंभ होने का समय आ गया था। वर्षा जल्दी ही आ जायेगी। रात भर वर्षा होगी और दिन में आसमान खुला। यहां वैसे भी वर्षा कम ही होती है। छिपकर थोड़ी बरस जाती है, फिर गायब। इन्हीं दिनों तो नासिर ने उसे क्रिकेट प्रैक्टिस के लिए बुलाया था। अब वह क्या कर रहा होगा ? क्या वह भी जाग रहा होगा ? उसके पिता कहीं मर-वर गये हों तो ? दो हजार रजाकारों के साथ कहीं वह भी खेत न रहे हों।

चंद्रशेखर बरगद के पास आया। एक बार पहले भी वह इसी तरह रात में बरगद के पास आया था, तो कहीं गीत बज रहा था। अब झींगुर की आवाज के अलावा सब जैसे शांत था। इस समय बजा क्या होगा ? सुबह होने में अभी कितना वक्त और है ?

चंद्रशेखर लांसर बैरक्स के आस-पास टहलता रहा। कुल उन्नीस मकान हैं। आधे से अधिक घरों में अंधेरा है। क्योंकि वे खाली पड़े थे। बाकी के घरों में रोशनी तो होती नहीं थी सो अंधेरे मे डूबे थे। क्या इन घरों में एक बच्चा, या एक विद्यार्थी या एक रोगी भी ऐसा नहीं होगा जिसे रोशनी की जरूरत पड़ती हो ! शहर का परिवेश घरों को कितनी जल्दी बदल देता है।

कृष्णस्वामी के घर कोई पहरेदारी कर रहा है। उसी ने शायद अलार्म लगाया होगा। अलार्म बजकर शांत हो गया।

चंद्रशेखर के पैर दुख गये। दो दिनों में काफी घूमा है। इतना घूमने का परिणाम तो निकलेगा न।

सुबह अब होने ही वाली है। यह नीरवता रात्रि के अंतिम पहर की है।

नीरवता के बीच एक आवाज कहीं से आ रही है। पर वह इतनी धीमी है कि इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि यह आवाज मील भर दूर कहीं से आ रही है।

वही आवाज फिर से आ रही है। रेवले स्टेशन की दिशा से यह आवाज आ रही है। सहसा वह दिशा लाल हो गयी। चार दिनों की शांति सहसा भंग हो गयी।

चंद्रशेखर बदहवास-सा रेलवे स्टेशन की ओर दौड़ा। वह लाल रंग उसके दिमाग पर हावी हो गया था। वह जब रेजीमेंटल बाजार पहुंचा तो इस शोर का कारण उसकी समझ में आ गया। वहां लाठियां लेकर ठीक पुलिस स्टेशन के सामने लोग आपस में भिड़ रहे थे।

चंद्रशेखर ने आव देखा न ताव। भीड़ की दिशा में दौड़ पड़ा। वही चक्की, जहां एक बार पहले भी झगड़ा हो चुका था। वही दर्जी की दुकान, वे ही कतार में बनी दुकानें। घरों के दरवाजे इस वक्त भी बंद थे। घर के भीतर औरतों और बच्चों की चीखें! भीड़ छितरने लगी। पांच मिनट में ही गलियों से सारी भीड़ गायब हो गयी।

इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण चंद्रशेखर समझे इससे पहले बंदूक की आवाज उसे सुनाई दे गयी।

अब चंद्रशेखर भी गलियों में से होकर भागने लगा। पूरा इलाका जैसे जागकर गलियों में आ खड़ा हुआ था। वह मोहल्ला हिंदुओं का था। हालांकि कई लोग बाहर चले गये थे फिर भी जनता काफी थी। इस समय उन्हें भय भी किस बात का!

चंद्रशेखर को लेकिन उनसे डर लगने लगा। गलियों-गलियों वह रेलवे स्टेशन के पास आ गया। वहां ईरानी होटल के सामने जैसे होली जल रही थी। होटल की कुर्सियां, मेज, लकड़ियां, कोयले, बर्तन, क्राकरी सभी जैसे राख हो रही थीं। चारों ओर खड़ी जनता जैसे उत्साह में आ रही थी। उसके घर से दिखने वाली लाल रोशनी इसी भयंकर आगजनी की थी।

चंद्रशेखर सहम गया। ये होटल वाले, कुछ ही दिनों बाद नयी मेज-कुर्सियां लेकर व्यापार शुरू कर देंगे। रेजीमेंटल बाजार के दंगे में कुछ ही जगहें ऐसी हैं, जिन पर बार-बार हमला किया जाता रहा है। यह तो अपेक्षित ही रहा होगा। पर दुर्घटना कहीं और ही हुई होगी।

चंद्रशेखर भागता हुआ स्टेशन रोड पर मुड़ गया। सारी सड़क अंधेरे में बिछी पड़ी थी। अस्पताल की धीमी बत्तियों ने रास्ता सुझाया। आंखें धुंधलाने लगीं। शरणार्थियों की सारी झोंपड़ियां तहस-नहस हो गयी थीं। मिट्टी के बर्तन, कपड़े सड़क पर फेंक दिये गये थे। पीपे, बक्से टूटे हुए छितरे पड़े थे। बीच-बीच में सड़ी-गली

सब्जियां और खाने की सामग्री भी पड़ी हुई थी । कुत्ते लगातार भौंकते हुए इधर-उधर भाग रहे थे । कल शाम का एक भी चेहरा नजर नहीं आया । लगा यह घटना जैसे अभी-अभी कुछ देर पहले ही हुई है । शांति के साथ जीने वाले ये शरणार्थी कहां चले गये ? वे क्या-क्या लेकर भागे होंगे ? उनके पास बचा भी क्या होगा ?

सहसा, भीड़ का एक रेला स्टेशन की ओर से चीखता हुआ आया । उस अफरा-तफरी में भी चंद्रशेखर को पहचानकर, उसे भी अपने साथ भगाकर ले गया । शायद कुछ लोग पीछा कर रहे थे । इस वक्त वे पीछा कर रहे हैं, ठीक है । पर कितनी देर लगेगी, उनकी स्थिति ठीक शरणार्थियों की तरह होने में ?

चंद्रशेखर अस्पताल की ओर दौड़ा । अस्पताल के दरवाजे ऊंचे और भीतर से बंद थे । चंद्रशेखर के साथ बीस लोग तो भागकर आये ही होंगे । आज सभी की शिवरात्रि है ।

चंद्रशेखर जल्दी ही मोंडा पहुंच गया । पर मोंडा में भी स्थिति ठीक नहीं थी । न जाने कहां से पत्थर और लाठियां बरसायी जा रहीं थीं । भीड़ ने बीचों-बीच होली जलायी थी । उसकी रोशनी में भागते हुए लोग उसे भूत लगे । उनकी चीखें भी मानवीय कतई नहीं थीं ।

चंद्रशेखर इस्लामिया हाई स्कूल की ओर भागा । कोई उसका पीछा कर रहा है । इसी स्कूल के पास एक बार उसने मार भी खायी थी । अब भी वह वहीं भाग रहा था ।

सामने की ओर से भी भीड़ मशाल सहित भागती हुई आ रही थी । वह कैसे यकीन कर ले कि यह भीड़ हिंदुओं की ही है ?

चंद्रशेखर सहसा स्कूल के पास एक गली में मुड़ गया । मशाल वाली भीड़ उसका पीछा करने लगी ।

चंद्रशेखर ने एक मकान की दीवार फांदी । वह भीतर कूद गया । उसके कूदने के कुछ क्षण बाद, 'पकड़ो-पकड़ो, मार डालो सालों को' की आवाजें आने लगीं । बंद मकानों के दरवाजे, खिड़कियों को लाठियों से ठोंकती-पीटती हुई भीड़ निकल गयी । उस घर के लोग दंगे से पहले ही जगे हुए थे । उन लोगों ने चंद्रशेखर को एक मिनट में पहचान लिया । वे भागकर भीतर छिप गये ।

हैदराबाद-सिकंदराबाद के सैकड़ों आम गरीब मुसलमानों में से एक का घर था वह । एक, सिर्फ एक बत्ती । तीन-चार पुरुष, तीन-चार स्त्रियां । तीन-चार बच्चे, एक बुढ़िया । वे तीन-चार पुरुष मिल कर चंद्रशेखर को आसानी से मार सकते थे । पर वे जैसे खौफ खाये हुए थे । पूरी जगह गंधा रही थी ।

इससे पहले कि चंद्रशेखर पूरी स्थिति को समझ सके, एक घटना घटी। हो सकता है, ऐसी योजना उनके दिमाग में पहले से ही रही हो। उन स्त्रियों में से एक सोलह-सत्रह वर्षीय युवती आगे आयी। 'मैं भीख मांगती हूं, हमारा कुछ मत बिगाड़िये।' कहते हुए उसने अपनी कमीज उतार दी। एक ही क्षण में उसने पजामे का नाड़ा खोल दिया। उस मद्धिम रोशनी में भी, उसकी हड्डियां गिनी जा सकती थीं। वह निर्वस्त्र खड़ी रही।

चंद्रशेखर की आंखें चुंधिया गयीं। 'नहीं . . . ' वह चीखा। पता नहीं उस युवती ने इसका क्या मतलब निकाला, वह एक कदम और आगे आयी।

चंद्रशेखर दोबारा चीखा, 'नहीं ।' उसका जी मितलाने लगा। गले में जैसे कोई कसैली चीज निकलकर मुंह में भर गयी। उसने जल्दी से दीवार फांदी और पागलों की तरह भागने लगा। शरणार्थियों की खस्ता हालत ने उसकी जुगुप्सा नहीं जगायी थी। उसने अपनी जिंदगी में पहली बार एक निर्वस्त्र स्त्री को देखा था और उसने उसे छिन्न-भिन्न कर के रख दिया। उसे जैसे नाली का कीड़ा बना दिया। अपने घर वालों को बचाने के लिए उसने यह क्या कर दिया ? वह अब भी बच्ची है। इस दुनिया में जीने के लिए, अपनी जान बचाने के लिए एक बच्चे को भी कितना छोटा होना पड़ता है। और वह इसका निमित्त बनकर रह गया। कहां धोये, इस दाग को वह ? क्या सचमुच वह धो सकेगा ?

चंद्रशेखर दौड़ता रहा। उसने महसूस किया, सुबह धीरे-धीरे उतर रही है।

मंडल डी टी पी सिस्टम्स, डी-71 अमर कालोनी, लाजपत नगर, नई दिल्ली-110024 द्वारा लेजर कम्पोजिंग और **सेंट्रल इलेक्ट्रिक प्रेस,** नारायना इंडिस्ट्रयल एरिया I, दिल्ली द्वारा मुद्रित।